

त्रीणादेवी अशोकभाई सराफ

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प...१८६

ॐ

नमः शुद्धात्मने ।

परमागम-पीयूष

[पंचपरमागम-स्वाध्याय]

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत समयसार, प्रवचनसार,
पंचास्तिकायसंग्रह, नियमसार और अष्टप्राभृतकी प्राकृतभाषाबद्ध
मूल गाथाओंका गुजराती पद्यानुवाद



पद्यानुवादक

पंडितरत्न हिम्मतलाल जैठालाल शाह

B. Sc.



प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-३६४२५०

प्रथमावृत्ति : प्रति २,०००

वीर सं. २५२२ □ वि.सं. २०५२ □ सन् १९९६

मूल्य : २०=००

टाइप सेटिंग :

अरिहन्त कोम्प्युटर ग्राफिक्स

सोनगढ-३६४२५०

मुद्रक :

स्मृति ऑफसेट

सोनगढ-३६४२५०

Phone : 44381

प्रकाशकीय निवेदन

अध्यात्मनिधिके स्वामी, स्वानुभूतिविभूषित, परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका यह महान उपकार है कि उनके पुनीत प्रतापसे इस युगमें आबालगोपाल सर्व जिज्ञासुओंको शुद्धात्मतत्त्वप्रधान अध्यात्मतत्त्वके श्रवण एवं अभ्यासकी रुचि जागृत हुई है। आज देशविदेशमें अध्यात्मतत्त्वका प्रचार-प्रसार जो प्रवर्तमान है वह उनके धर्मोपकारका ही सुफल है।

श्रुतावतार परमोपकारी श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत सर्वोत्तम अध्यात्म श्रुतरत्न श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री पंचास्तिकायसंग्रह, श्री नियमसार और श्री अष्टप्राभृतका अध्यात्म-अमृत, अनेक बार उन पर प्रवचन देकर, अध्यात्मश्रुतोपासक परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीने मुमुक्षु समाजको पिलाया है।

समयसार-पद्यानुवादकी रचनाके कुछ समय पूर्व पूज्य गुरुदेवश्रीने स्वयं स्फुरित भावनासे पूछा—क्या आज तक इसका पद्यानुवाद नहीं हुआ होगा ? यदि पद्यानुवाद हो तो मूल गाथाके भाव समझनेमें एवं स्मृतिमें रखनेके लिये सरलता रहे। पूज्य गुरुदेवश्रीकी भावनाको झेलकर गहन आदर्श-आत्मार्थी आदरणीय पंडितरत्न श्री हिमंतलालभाई जेठालाल शाह (प्रथममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके बड़े भाई)ने कुछ घंटोंमें प्रारम्भकी पांच गाथाओंका पद्यानुवाद रचा और गाकर प्रथम पूज्य बहिनश्रीको सुनाया, सुनते ही पूज्य बहिनश्रीने प्रमोद सह कहा कि—“मानों साक्षात् कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वयं गा रहे हों ऐसा भाववाही एवं सुमधुर लगता है। जाकर गुरुदेवको सुनाओ, वे भी बहुत प्रसन्न होंगे।” तत्पश्चात् बहिनश्रीकी आज्ञानुसार पद्यानुवाद पूज्य गुरुदेवश्रीको सुनाते ही वे बहुत खुश हो गये, और बोले कि पद्यानुवाद बहुत अच्छा बना है, तथा उन्होंने आज्ञा की कि “अब, इस उत्तमोत्तम पूरे ग्रन्थका पद्यानुवाद बनाओ।” इस प्रकार उन्हींके कृपापूर्ण पुनीत प्रतापसे एवं कल्याणकारी प्रेरणासे क्रमशः श्री समयसार आदि परमागमोंके (टीका सहित) पद्यानुवादके साथ साथ प्राकृतभाषाबद्ध मूल गाथाओंका यह सरल, सुगम, रोचक एवं मधुर पद्यानुवाद आदरणीय पंडितजी द्वारा सम्पन्न हुआ है।

यह भावगम्भीर एवं मधुर पद्यानुवाद गुरुदेवश्रीकी बहुत प्रिय था। वे स्वयं बहुत प्रसन्नतासे इसका स्वाध्याय करते थे। और उन्होंने इसका सामुदायिक स्वाध्याय (—मुखपाठ) सोनगढ़में प्रतिमास चार बार क्रमशः करनेकी प्रथाका प्रारम्भ कराया था। वह प्रथा उनकी एवं पूज्य बहिनश्रीकी मंगल उपस्थितिमें प्रवर्तमान थी, ओर अभी भी वह नियमित चालू है।

सोनगढ़में प्रवर्तमान स्वाध्याय—प्रथा देखकर अनेक हिन्दीभाषी मुमुक्षुओंकी यह प्रबल माँग थी कि यह मूलपाठानुगामी अर्थगम्भीर गुजराती पद्यानुवाद देवनागरी लिपिमें यदि प्रकाशित कराया जाये तो हिन्दी मुमुक्षुसमाजको बहुत लाभ होगा और वे अपने गाँवमें भी यह स्वाध्याय-प्रथाका अति रुचिसे प्रारम्भ करेंगे। उनकी भावनाको कार्यान्वित कर यह 'परमागम-पीयूष' अर्थात् 'पंच-परमागम-स्वाध्याय' ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए अतीव प्रसन्नता अनुभूत होती है।

इस 'परमागम-पीयूष'का गहन अध्ययन कर—उसमें प्रदर्शित अध्यात्मभावोंका सम्यक् अवगाहन कर—भव्य आत्मा अपने अन्तःकरणमें उसका यथायोग्य परिणमन प्रगट करें यही प्रशस्त भावना।

वि.सं. २०५२, चैत्र कृष्णा १०,
बहिनश्री चम्पाबेनकी
६४ वीं सम्यक्त्व-जयन्ती

निवेदक—
साहित्यप्रकाशनसमिति,
श्री दि० जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़—३६४ २५०

श्री समयसार-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर ! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साधिया अमृते पूर्या;
ग्रंथाधिराज ! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्वा.

(शिखरिणी)

अहो ! वाणी तारी प्रशमरस भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराशी ऊतरती,
विभावेधी धंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सधळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाधीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सह छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिवंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

जिनजीनी वाणी

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
 अनी कुंदकुंद गूथे माळ रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.

वाणी भली मन लागे रळी,
 जेमां सार--समय शिरताज रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

गूथ्यां पाहुड ने गूथ्युं पंचास्ति,
 गूथ्युं प्रवचनसार रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.

गूथ्युं नियमसार, गूथ्युं रयणसार,
 गूथ्यो समयनो सार रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
 जिनजीनो ॐकारनाद रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.

वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
 वंदुं अ ॐकारनाद रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

हैडे हजो, मारा भावे हजो,
 मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा,
 वाजो मने दिनरात रे,
 जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

-हिम्मतलाल जेठालाल शाह



श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोहलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो ! गुरु क्हांन तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो ! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना !
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु-सत्त्व झळके, परद्रव्य नातो तूटे;
-रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेन्द्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र ! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र ! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी ! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति ! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेतुं रत्न पामुं—मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी !

-हिम्मतलाल जेठालाल शाह

परमागम-पीयूष

[पंचपरमागम-स्वाध्याय]

अनुक्रमसूचि

विषय	पृष्ठ
समयसार-पद्यानुवाद	१-४५
प्रवचनसार-पद्यानुवाद	४६-७४
पंचास्तिकायसंग्रह-पद्यानुवाद	७५-९२
नियमसार-पद्यानुवाद	९३-११३
अष्टप्राभृत-पद्यानुवाद	११४-१८४



ॐ

श्री

समयसार

(पद्यानुवाद)

पूर्वरंग

(हरिगीत)

- ध्रुव, अचल ने अनुपम गति पामेल सर्वे सिद्धने
वंदी कहुं श्रुतकेवळीभाषित समयप्राभृत अहो ! १.
- जीव चरित-दर्शन-ज्ञानस्थित स्वसमय निश्चय जाणवो;
स्थित कर्मपुद्गलना प्रदेशे परसमय जीव जाणवो. २.
- अेकत्वनिश्चय-गत समय सर्वत्र सुंदर लोकमां;
तेथी बने विखवादिनी बंधनकथा अेकत्वमां. ३.
- श्रुत-परिचित-अनुभूत सर्वने कामभोगबंधननी कथा;
परथी जुदा अेकत्वनी उपलब्धि केवळ सुलभ ना. ४.
- दर्शावुं अेक विभक्त अे, आत्मा तणा निज विभवथी;
दर्शावुं तो करजो प्रमाण, न दोष ग्रह स्वलना यदि. ५.

- नथी अप्रमत्त के प्रमत्त नथी जे अेक ज्ञायक भाव छे,
 अे रीत 'शुद्ध' कथाय, ने जे ज्ञात ते तो ते ज छे. ६.
- चारित्र, दर्शन, ज्ञान पण व्यवहार-कथने ज्ञानीने;
 चारित्र नहि, दर्शन नहीं, नहि ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध छे. ७.
- भाषा अनार्य विना न समजावी शकाय अनार्यने;
 व्यवहार विण परमार्थनो उपदेश अेम अशक्य छे. ८.
- श्रुतथी खरे जे शुद्ध केवळ जाणतो आ आत्मने;
 लोकप्रदीपकरा ऋषि श्रुतकेवळी तेने कहे. ९.
- श्रुतज्ञान सौ जाणे, जिनो श्रुतकेवळी तेने कहे;
 सौ ज्ञान आत्मा होईने श्रुतकेवळी तेथी ठरे. १०.
- व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ छे;
 भूतार्थने आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय छे. ११.
- देखे परम जे भाव तेने शुद्धनय ज्ञातव्य छे;
 अपरम भावे स्थितने व्यवहारनो उपदेश छे. १२.
- भूतार्थथी जाणेल जीव, अजीव, वळी पुण्य, पाप ने
 आसरव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ते सम्यक्त्व छे. १३.
- अबद्धस्पृष्ट, अनन्य ने जे नियत देखे आत्मने,
 अविशेष, अणसंयुक्त, तेने शुद्धनय तुं जाणजे. १४.
- अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जे अविशेष देखे आत्मने,
 ते द्रव्य तेम ज भाव जिनशासन सकल देखे खरे. १५.

दर्शन, वळी नित ज्ञान ने चारित्र साधु सेववां;
पण अे त्रणे आत्मा ज केवळ जाण निश्चयदृष्टिमां. १६.

ज्यम पुरुष कोई नृपतिने जाणे, पछी श्रद्धा करे,
पछी यलथी धन-अर्थी अे अनुचरण नृपतिनुं करे; १७.

जीवराज अेम ज जाणवो, वळी श्रद्धवो पण अे रीते,
अेनुं ज करवुं अनुचरण पछी यलथी मोक्षार्थीअे. १८.

नोकर्म-कर्मे 'हुं', हुंमां वळी 'कर्मे' ने नोकर्म छे',
—अे बुद्धि ज्यां लगी जीवनी, अज्ञानी त्यां लगी ते रहे. १९.

हुं आ अने आ हुं, हुं छुं आनो अने छे मारुं आ,
जे अन्य को परद्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वा; २०.

हतुं मारुं आ पूर्वे, हुं पण आनो हतो गतकाळमां,
वळी आ थशे मारुं अने आनो हुं थईश भविष्यमां. २१.

अयथार्थ आत्मविकल्प आवो, जीव संमूढ आचरे;
भूतार्थने जाणेल ज्ञानी अे विकल्प नहीं करे. २२.

अज्ञानथी मोहितमति बहुभावसंयुत जीव जे,
'आ बद्ध तेम अबद्ध पुद्गलद्रव्य मारुं' ते कहे. २३.

सर्वज्ञज्ञान विषे सदा उपयोगलक्षण जीव जे,
ते केम पुद्गल थई शके के 'मारुं आ' तुं कहे अरे? २४.

जो जीव पुद्गल थाय, पामे पुद्गलो जीवत्वने,
तुं तो ज अेम कही शके के 'आ मारुं पुद्गलद्रव्य छे'. २५.

- जो जीव होय न देह तो आचार्य-तीर्थकर तणी;
स्तुति सौ ठरे मिथ्या ज, तेथी अकता जीव-देहनी. २६.
- जीव-देह बन्ने अेक छे—व्यवहारनयनुं वचन आ;
पण निश्चये तो जीव-देह कदापि अेक पदार्थ ना. २७.
- जीवर्थां जुदा पुद्गलमयी आ देहने स्तवीने मुनि
माने प्रभु केवळी तणुं वंदन थयुं, स्तवना थई. २८.
- पण निश्चये नथी योग्य अे, नहि देहगुण केवळी तणा;
जे केवळीगुणने स्तवे परमार्थ केवळी ते स्तवे. २९.
- वर्णन कर्ये नगरी तणुं नहि थाय वर्णन भूपनुं,
कीधे शरीर गुणनी स्तुति नहि स्तवन केवळीगुणनुं. ३०.
- जीती इन्द्रियो ज्ञानस्वभावे अधिक जाणे आत्मने,
निश्चय विषे स्थित साधुओ भाखे जितेन्द्रिय तेहने. ३१.
- जीती मोह ज्ञानस्वभावथी जे अधिक जाणे आत्मने,
परमार्थना विज्ञायको ते साधु जितमोही कहे. ३२.
- जितमोह साधु तणो वळी क्षय मोह ज्यारे थाय छे,
निश्चयविदो थकी तेहने क्षीणमोह नाग कथाय छे. ३३.
- सौ भावने पर जाणीने पचखाण भावोनुं करे,
तेथी नियमथी जाणवुं के ज्ञान प्रत्याख्यान छे. ३४.
- आ पारकुं अेम जाणीने परद्रव्यने को नर तजे,
त्यम पारका सौ जाणीने परभाव ज्ञानी परित्यजे. ३५.

- नथी मोह ते मारो कई, उपयोग केवळ अेक हुं,
—अे ज्ञानने, ज्ञायक समयना मोहनिर्ममता कहे. ३६.
- धर्मादि ते मारां नथी, उपयोग केवळ अेक हुं,
—अे ज्ञानने, ज्ञायक समयना धर्मनिर्ममता कहे. ३७.
- हुं अेक, शुद्ध, सदा अरुपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कई अन्य ते मारुं जरी परमाणुमात्र नथी अरे ! ३८.



१. जीव-अजीव अधिकार

- को मूढ, आत्म तणा अजाण, परात्मवादी जीव जे,
'छे कर्म, अध्यवसान ते जीव' अेम अे निरूपण करे ! ३९.
- वळी कोई अध्यवसानमां अनुभाग तीक्षण-मंद जे,
अेने ज माने आतमा, वळी अन्य को नोकर्मने ! ४०.
- को अन्य माने आतमा कर्मो तणा वळी उदयने,
को तीव्रमंद-गुणो सहित कर्मो तणा अनुभागने ! ४१.
- को कर्म ने जीव उभयमिलने जीवनी आशा धरे,
कर्मो तणा संयोगथी अभिलाष को जीवनी करे ! ४२.
- दुर्बुद्धिओ बहुविध आवा, आतमा परने कहे,
ते सर्वने परमार्थवादी कह्या न निश्चयवादीअे. ४३.

पुद्गल तणा परिणामथी नीपजेल सर्वे भाव आ
सहु केवळीजिन भाखिया, ते जीव केम कहो भला ? ४४.

रे ! कर्म अष्ट प्रकारनुं जिन सर्व पुद्गलमय कहे,
परिपाक समये जेहनुं फळ दुःख नाम प्रसिद्ध छे. ४५.

व्यवहार अे दर्शावियो जिनवर तणा उपदेशमां,
आ सर्व अध्यवसान आदि भाव ज्यां जीव वर्णव्या. ४६.

‘निर्गमन आ नृपनुं थयुं’—निर्देश सैन्यसमूहने,
व्यवहारथी कहेवाय अे, पण भूप अेमां अेक छे. ४७.

त्यम सर्व अध्यवसान आदि अन्यभावो जीव छे,
—सूत्रे कयौं व्यवहार, पण त्यां जीव निश्चय अेक छे. ४८.

जीव चेतनागुण, शब्द-रस-रूप-गंध-व्यक्तिविहीन छे,
निर्दिष्ट नहि संस्थान जीवनुं, ग्रहण लिंग थकी नहीं. ४९.

नथी वर्ण जीवने, गंध नहि, नहि स्पर्श, रस जीवने नहीं,
नहि रूप के न शरीर, नहि संस्थान, संहनने नहीं; ५०.

नथी राग जीवने द्वेष नहि, वळी मोह जीवने छे नहीं,
नहि प्रत्ययो, नहि कर्म के नोर्कर्म पण जीवने नहीं; ५१.

नथी वर्ग जीवने, वर्गणा नहि, स्पर्धको कई छे नहीं,
अध्यात्मस्थान न जीवने, अनुभागस्थानो पण नहीं; ५२.

जीवने नथी कई योगस्थानो, बंधस्थानो छे नहीं,
नहि उदयस्थानो जीवने, को मार्गणास्थानो नहीं; ५३.

- स्थितिबंधस्थान न जीवने, संक्लेशस्थानो पण नहीं,
स्थानो विशुद्धि तणां न, संयमलब्धिनां स्थानो नहीं; ५४.
- नथी जीवस्थानो जीवने, गुणस्थान पण जीवने नहीं,
परिणाम पुद्गलद्रव्यना आ सर्व होवाथी नक्की. ५५.
- वर्णादि गुणस्थानांत भावो जीवना व्यवहारथी,
पण कोई अे भावो नथी आत्मा तणा निश्चय थकी. ५६.
- आ भाव सह संबंध जीवनो क्षीरनीरवत् जाणवो;
उपयोगगुणथी अधिक तेथी जीवना नहि भाव को. ५७.
- देखी लूंटायुं पंथमां को, 'पंथ आ लूंटाय छे'—
बोले जनो व्यवहारी पण नहि पंथ को लूंटाय छे. ५८.
- त्यम वर्ण देखी जीवमां कर्मो अने नोकर्मनो,
भाखे जिनो व्यवहारथी 'आ वर्ण छे आ जीवनो'. ५९.
- अेम गंध, रस, रूप, स्पर्श ने संस्थान, देहादिक जे,
निश्चय तणा द्रष्टा बधुं व्यवहारथी ते वर्णवे. ६०.
- संसारी जीवने वर्ण आदि भाव छे संसारमां,
संसारथी परिमुक्तने नहि भाव को वर्णादिना. ६१.
- आ भाव सर्वे जीव छे जो अेम तुं माने कदी,
तो जीव तेम अजीवमां कई भेद तुज रहेतो नथी ! ६२.
- वर्णादि छे संसारी जीवनां अेम जो तुज मत बने,
संसारमां स्थित सौ जीवो पाम्या तदा रूपित्वने; ६३.

अे रीत पुद्गल ते ज जीव, हे मूढमति ! समलक्षणे,
ने मोक्षप्राप्त थतांय पुद्गलद्रव्य पाम्युं जीवत्वने ! ६४.

जीव अेक-द्वि-त्रि-चतुर्-पंचेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म ने
पर्याप्त आदि नामकर्म तणी प्रकृति छे खरे. ६५.

प्रकृति आ पुद्गलमयी थकी करणरूप थतां अरे,
रचना थती जीवस्थाननी जे, जीव केम कहाय ते ? ६६.

पर्याप्त अणपर्याप्त, जे सूक्ष्म अने बादर बधी
कही जीवसंज्ञा देहने ते सूत्रमां व्यवहारथी. ६७.

मोहनकरमना उदयथी गुणस्थान जे आ वर्णव्यां,
ते जीव केम बने, निरंतर जे अचेतन भाखियां ? ६८.



२. कर्ताकर्म अधिकार

आत्मा अने आस्रव तणो ज्यां भेद जीव जाणे नहीं,
क्रोधादिमां स्थिति त्यां लगी अज्ञानी अेवा जीवनी. ६९.

जीव वर्ततां क्रोधादिमां संचय करमनो थाय छे,
सहु सर्वदर्शी अे रीते बंधन कहे छे जीवने. ७०.

आ जीव ज्यारे आस्रवोनुं तेम निज आत्मा तणुं
जाणे विशेषांतर, तदा बंधन नहीं तेने थतुं. ७१.

- अशुचिपणुं, विपरीतता अे आस्रवोनां जाणीने,
वळी जाणीने दुखकारणो, अेथी निवर्तन जीव करे. ७२.
- छुं अेक, शुद्ध, ममत्वहीन हुं, ज्ञानदर्शनपूर्ण छुं;
अेमां रही स्थित, लीन अेमां, शीघ्र आ सौ क्षय करुं. ७३.
- आ सर्व जीवनिबद्ध, अध्रुव, शरणहीन, अनित्य छे,
अे दुःख, दुखफळ जाणीने अेनाथी जीव पाछो वळे. ७४.
- परिणाम कर्म तणुं अने नोकर्मनुं परिणाम जे
ते नव करे जे, मात्र जाणे, ते ज आत्मा ज्ञानी छे. ७५.
- विधविध पुद्गलकर्मने ज्ञानी जरूर जाणे भले,
परद्रव्यपर्याये न प्रणमे, नव ग्रहे, नव ऊपजे. ७६.
- विधविध निज परिणामने ज्ञानी जरूर जाणे भले,
परद्रव्यपर्याये न प्रणमे, नव ग्रहे, नव ऊपजे. ७७.
- पुद्गलकरमनुं फळ अनंतुं ज्ञानी जीव जाणे भले,
परद्रव्यपर्याये न प्रणमे, नव ग्रहे, नव ऊपजे. ७८.
- अे रीत पुद्गलद्रव्य ते पण निज भावे परिणमे,
परद्रव्यपर्याये न प्रणमे, नव ग्रहे, नव ऊपजे. ७९.
- जीवभावहेतु पामी पुद्गल कर्मरूपे परिणमे;
अेवी रीते पुद्गलकरमनिमित्त जीव पण परिणमे. ८०.
- जीव कर्मगुण करतो नथी, नहि जीवगुण कर्मो करे;
अन्योन्यना निमित्तथी परिणाम बेउ तणा बने. ८१.

अे कारणे आत्मा ठरे कर्ता खरे निज भावथी,
पुद्गलकरमकृत सर्व भावोनो कदी कर्ता नथी. ८२.

आत्मा करे निजने ज अे मंतव्य निश्चयनय तणुं,
वळी भोगवे निजने ज आत्मा अेम निश्चय जाणवुं. ८३.

आत्मा करे विधविध पुद्गलकर्म—मत व्यवहारनुं,
वळी ते ज पुद्गलकर्म आत्मा भोगवे विधविधनुं. ८४.

पुद्गलकरम जीव जो करे, अेने ज जो जीव भोगवे,
जिनने असंमत द्विक्रियाथी अभिन्न ते आत्मा ठरे. ८५.

जीवभाव, पुद्गलभाव—बन्ने भावने जेथी करे,
तेथी ज मिथ्यादृष्टि अेवा द्विक्रियावादी ठरे. ८६.

मिथ्यात्व जीव अजीव द्विविध, अेम वळी अज्ञान ने
अविरमण, योगो, मोह ने क्रोधादि उभयप्रकार छे. ८७.

मिथ्यात्व ने अज्ञान आदि अजीव, पुद्गलकर्म छे;
अज्ञान ने अविरमण वळी मिथ्यात्व जीव, उपयोग छे. ८८.

छे मोहयुत उपयोगना परिणाम त्रण अनादिना,
—मिथ्यात्व ने अज्ञान, अविरतभाव अे त्रण जाणवा. ८९.

अेनाथी छे उपयोग त्रणविध, शुद्ध निर्मळ भाव जे;
जे भाव कंई पण ते करे, ते भावनो कर्ता बने. ९०.

जे भाव जीव करे अरे ! जीव तेहनो कर्ता बने;
कर्ता थतां, पुद्गल स्वयं त्यां कर्मरूपे परिणमे. ९१.

- परने करे निजरूप ने निज आत्मने पण पर करे,
अज्ञानमय अे जीव अेवो कर्मनो कारक बने. ६२.
- परने न करतो निजरूप, निज आत्मने पर नव करे,
अे ज्ञानमय आत्मा अकारक कर्मनो अेम ज बने. ६३.
- ‘हुं क्रोध’ अेम विकल्प अे उपयोग त्रणविध आचरे,
त्यां जीव अे उपयोगरूप जीवभावनो कर्ता बने. ६४.
- ‘हुं धर्म आदि’ विकल्प अे उपयोग त्रणविध आचरे,
त्यां जीव अे उपयोगरूप जीवभावनो कर्ता बने. ६५.
- जीव मंदबुद्धि अे रीते परद्रव्यने निजरूप करे,
निज आत्मने पण अे रीते अज्ञानभावे पर करे. ६६.
- अे कारणे आत्मा कह्यो कर्ता सहु निश्चयविदे,
—अे ज्ञान जेने थाय ते छोडे सकल कर्तृत्वने. ६७.
- घट-पट-रथादिक वस्तुओ, करणो अने कर्मो वळी,
नोकर्म विधविध जगतमां आत्मा करे व्यवहारथी. ६८.
- परद्रव्यने जीव जो करे तो जरूर तन्मय ते बने,
पण ते नथी तन्मय अरे ! तेथी नहीं कर्ता ठरे. ६९.
- जीव नव करे घट, पट नहीं, जीव शेष द्रव्यो नव करे;
उत्पादको उपयोगयोगो, तेमनो कर्ता बने. १००.
- ज्ञानावरणआदिक जे पुद्गल तणा परिणाम छे,
करतो न आत्मा तेमने, जे जाणतो ते ज्ञानी छे. १०१.

जे भाव जीव करे शुभाशुभ तेहनो कर्ता खरे,
तेनुं बने ते कर्म, आत्मा तेहनो वेदक बने. १०२.

जे द्रव्य जे गुण-द्रव्यमां, नहि अन्य द्रव्ये संक्रमे;
अणसंक्रम्युं ते केम अन्य परिणमावे द्रव्यने ? १०३.

आत्मा करे नहि द्रव्य-गुण पुद्गलमयी कर्मो विषे,
ते उभयने तेमां न करतो केम तत्कर्ता बने ? १०४.

जीव हेतुभूत थतां अरे ! परिणाम देखी बंधनुं,
उपचारमात्र कथाय के आ कर्म आत्माअे कर्युं. १०५.

योद्धा करे ज्यां युद्ध त्यां अे नृपकर्युं लोको कहे,
अेम ज कर्यां व्यवहारथी ज्ञानावरण आदि जीवे. १०६.

उपजावतो, प्रणमावतो, ग्रहतो अने बांधे, करे,
पुद्गलदरवने आत्मा—व्यवहारनयवक्तव्य छे. १०७.

गुणदोषउत्पादक कह्यो ज्यम भूपने व्यवहारथी,
त्यम द्रव्यगुणउत्पन्नकर्ता जीव कह्यो व्यवहारथी. १०८.

सामान्य प्रत्यय चार निश्चय बंधना कर्ता कह्या,
—मिथ्यात्व ने अविरमण तेम कषाययोगो जाणवा. १०९.

वळी तेमनो पण वर्णव्यो आ भेद तेर प्रकारनो,
—मिथ्यात्वथी आदि करीने चरम भेद सयोगीनो. ११०.

पुद्गलकरमना उदयथी उत्पन्न तेथी अजीव आ,
ते जो करे कर्मो भले, भोक्ताय तेनो जीव ना. १११.

जेथी खरे 'गुण' नामना आ प्रत्ययो कर्मो करे,
तेथी अकर्ता जीव छे, 'गुणो' करे छे कर्मने. ११२.

उपयोग जेम अनन्य जीवनो, क्रोध तेम अनन्य जो,
तो दोष आवे जीव तेम अजीवना ऐकत्वनो. ११३.

तो जगतमां जे जीव ते ज अजीव पण निश्चय ठरे;
नोकर्म, प्रत्यय, कर्मना ऐकत्वमां पण दोष ऐ. ११४.

जो क्रोध ऐ रीत अन्य, जीव उपयोगआत्मक अन्य छे,
तो क्रोधवत् नोकर्म, प्रत्यय, कर्म ते पण अन्य छे. ११५.

जीवमां स्वयं नहि बद्ध, न स्वयं कर्मभावे परिणमे,
तो ऐवुं पुद्गलद्रव्य आ परिणमनहीन बने अरे ! ११६.

जो वर्गणा कार्मण तणी नहि कर्मभावे परिणमे,
संसारनो ज अभाव अथवा समय सांख्य तणो ठरे ! ११७.

जो कर्मभावे परिणमावे जीव पुद्गलद्रव्यने,
क्यम जीव तेने परिणमावे जे स्वयं नहि परिणमे ? ११८.

स्वयमेव पुद्गलद्रव्य वळी जो कर्मभावे परिणमे,
जीव परिणमावे कर्मने कर्मत्वमां—मिथ्या बने. ११९.

पुद्गलद्रव्य जे कर्मपरिणत, निश्चये कर्म ज बने;
ज्ञानावरणइत्यादिपरिणत, ते ज जाणो तेहने. १२०.

कर्म स्वयं नहि बद्ध, न स्वयं क्रोधभावे परिणमे,
तो जीव आ तुज मत विषे परिणमनहीन बने अरे ! १२१.

क्रोधादिभावे जो स्वयं नहि जीव पोते परिणमे,
संसारनो ज अभाव अथवा समय सांख्य तणो ठरे ! १२२.

जो क्रोध — पुद्गलकर्म—जीवने परिणमावे क्रोधमां,
क्यम क्रोध तेने परिणमावे जे स्वयं नहि परिणमे ? १२३.

अथवा स्वयं जीव क्रोधभावे परिणमे—तुज बुद्धि छे,
तो क्रोध जीवने परिणमावे क्रोधमां—मिथ्या बने. १२४.

क्रोधोपयोगी क्रोध, जीव मानोपयोगी मान छे,
मायोपयुत माया अने लोभोपयुत लोभ ज बने. १२५.

जे भावने आत्मा करे, कर्ता बने ते कर्मनो;
ते ज्ञानमय छे ज्ञानीनो, अज्ञानमय अज्ञानीनो. १२६.

अज्ञानमय अज्ञानीनो, तेथी करे ते कर्मने;
पण ज्ञानमय छे ज्ञानीनो, तेथी करे नहि कर्मने. १२७.

वळी ज्ञानमय को भावमांथी ज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे ज्ञानी तणा सौ भाव ज्ञानमयी खरे; १२८.

अज्ञानमय को भावमांथी अज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे अज्ञानीना अज्ञानमय भावो बने. १२९.

ज्यम कनकमय को भावमांथी कुंडलादिक ऊपजे,
पण लोहमय को भावथी कटकादि भावो नीपजे. १३०.

त्यम भाव बहुविध ऊपजे अज्ञानमय अज्ञानीने,
पण ज्ञानीने तो सर्व भावो ज्ञानमय अम ज बने. १३१.

अज्ञान तत्त्व तणुं जीवोने, उदय ते अज्ञाननो,
अप्रतीत तत्त्वनी जीवने जे, उदय ते मिथ्यात्वनो; १३२.

जीवने अविरतभाव जे, ते उदय अणसंयम तणो,
जीवने कलुष उपयोग जे, ते उदय जाण कषायनो; १३३.

शुभ के अशुभ प्रवृत्ति के निवृत्तिनी चेष्टा तणो
उत्साह वर्ते जीवने, ते उदय जाण तुं योगनो. १३४.

आ हेतुभूत ज्यां थाय त्यां कार्मणवरगणारूप जे,
ते अष्टविध ज्ञानावरणइत्यादिभावे परिणमे; १३५.

कार्मणवरगणारूप ते ज्यां जीवनिबद्ध बने खरे,
आत्माय जीवपरिणामभावोनो तदा हेतु बने. १३६.

जो कर्मरूप परिणाम, जीव भेळा ज, पुद्गलना बने,
तो जीव ने पुद्गल उभय पण कर्मपणुं पामे अरे ! १३७.

पण कर्मभावे परिणमन छे अेक पुद्गलद्रव्यने,
जीवभावहेतुथी अलग, तेथी, कर्मना परिणाम छे. १३८.

जीवना, करम भेळा ज, जो परिणाम रागादिक बने,
तो कर्म ने जीव उभय पण रागादिपणुं पामे अरे ! १३९.

पण परिणमन रागादिरूप तो थाय छे जीव अेकने,
तेथी ज कर्मोदयनिमित्तथी अलग जीवपरिणाम छे. १४०.

छे कर्म जीवमां बद्धस्पृष्ट—कथित नय व्यवहारनुं;
पण बद्धस्पृष्ट न कर्म जीवमां—कथन छे नय शुद्धनुं. १४१.

छे कर्म जीवमां बद्ध वा अणबद्ध अे नयपक्ष छे;
पण पक्षथी अतिक्रांत भाख्यो ते 'समयनो सार' छे. १४२.

नयद्वयकथन जाणे ज केवळ समयमां प्रतिबद्ध जे,
नयपक्ष कई पण नव ग्रहे, नयपक्षथी परिहीन ते. १४३.

सम्यक्त्व तेम ज ज्ञाननी जे अेकने संज्ञा मळे,
नयपक्ष सकल रहित भाख्यो, ते 'समयनो सार' छे. १४४.



३. पुण्य-पाप अधिकार

छे कर्म अशुभ कुशील ने जाणो सुशील शुभकर्मने !
ते केम होय सुशील जे संसारमां दाखल करे ? १४५.

ज्यम लोहनुं त्यम कनकनुं जंजीर जकडे पुरुषने,
अेवी रीते शुभ के अशुभ कृत कर्म बांधे जीवने. १४६.

तेथी करो नहि राग के संसर्ग अे कुशीलो तणो,
छे कुशीलना संसर्ग-रागे नाश स्वाधीनता तणो. १४७.

जेवी रीते को पुरुष कुत्सितशील जनने जाणीने,
संसर्ग तेनी साथ तेम ज राग करवो परितजे; १४८.

अेम ज करमप्रकृतिशीलस्वभाव कुत्सित जाणीने,
निज भावमां रत राग ने संसर्ग तेनो परिहरे. १४९.

जीव रक्त बांधे कर्मने, वैराग्यप्राप्त मुकाय छे,
—अे जिन तणो उपदेश, तेथी न राच तुं कर्मो विषे. १५०.

परमार्थ छे, नकी समय छे, शुध, केवळी, मुनि, ज्ञानी छे,
अेवा स्वभावे स्थित मुनिओ मोक्षनी प्राप्ति करे. १५१.

परमार्थमां अणस्थित जे तपने करे, व्रतने धरे,
सघळुंय ते तप बाळ ने व्रत बाळ सर्वज्ञो कहे. १५२.

व्रतनियमने धारे भले, तपशीलने पण आचरे,
परमार्थथी जे बाह्य ते निर्वाणप्राप्ति नहीं करे. १५३.

परमार्थबाह्य जीवो अरे ! जाणे न हेतु मोक्षनो,
अज्ञानथी ते पुण्य इच्छे हेतु जे संसारनो. १५४.

जीवादिनुं श्रद्धान समकित, ज्ञान तेमनुं ज्ञान छे,
रागादि-वर्जन चरण छे, ने आ ज मुक्तिपंथ छे. १५५.

विद्वज्जनो भूतार्थ तजी व्यवहारमां वर्तन करे,
पण कर्मक्षयनुं विधान तो परमार्थ-आश्रित संतने. १५६.

मळमिलनलेपथी नाश पामे श्वेतपणुं ज्यम वस्त्रनुं,
मिथ्यात्वमळना लेपथी सम्यक्त्व अे रीत जाणवुं. १५७.

मळमिलनलेपथी नाश पामे श्वेतपणुं ज्यम वस्त्रनुं,
अज्ञानमळना लेपथी वळी ज्ञान अे रीत जाणवुं. १५८.

मळमिलनलेपथी नाश पामे श्वेतपणुं ज्यम वस्त्रनुं,
चारित्र पामे नाश लिप्त कषायमळथी जाणवुं. १५९.

ते सर्वज्ञानी-दर्शी पण निज कर्मरज-आच्छादने,
संसारप्राप्त न जाणतो ते सर्व रीते सर्वने. १६०.

सम्यक्त्वप्रतिबंधक करम मिथ्यात्व जिनदेवे कहुं,
अेना उदयथी जीव मिथ्यात्वी बने अेम जाणवुं. १६१.

अेम ज्ञानप्रतिबंधक करम अज्ञान जिनदेवे कहुं,
अेना उदयथी जीव अज्ञानी बने अेम जाणवुं. १६२.

चारित्रने प्रतिबंध कर्म कषाय जिनदेवे कहुं,
अेना उदयथी जीव बने चारित्रहीन अेम जाणवुं. १६३.



४. आस्रव अधिकार

मिथ्यात्व ने अविरत, कषायो, योग ^१संज्ञ ^२असंज्ञ छे,
^३अे विविध भेदे जीवमां, जीवना अनन्य परिणाम छे; १६४.

वळी ^३तेह ज्ञानावरणआदिक कर्मनां कारण बने,
ने तेमनुं पण जीव बने जे रागद्वेषादिक करे. १६५.

सुदृष्टिने आस्रवनिमित्त न बंध, आस्रवरोध छे;
नहि बांधतो, जाणे ज पूर्वनिबद्ध जे सत्ता विषे. १६६.

रागादियुत जे भाव जीवकृत तेहने बंधक कह्यो;
रागादिथी प्रविमुक्त ते बंधक नहीं, ज्ञायक नर्यो. १६७.

फळ पक्व खरतां, वृंत सह संबंध फरी पामे नहीं,
त्यम कर्मभाव खर्ये, फरी जीवमां उदय पामे नहीं. १६८.

जे सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय वर्तता ते ज्ञानीने,
छे पृथ्वीपिंड समान ने सौ कर्मशरीरे बद्ध छे. १६९.

चउविध प्रत्यय समयसमये ज्ञानदर्शनगुणधी
बहुभेद बांधे कर्म, तेथी ज्ञानी तो बंधक नथी. १७०.

जे ज्ञानगुणनी जघन्यतामां वर्ततो गुण ज्ञाननो,
फरीफरी प्रणमतो अन्य रूपमां, तेथी ते बंधक कह्यो. १७१.

चारित्र, दर्शन, ज्ञान जेथी जघन्यभावे परिणमे,
तेथी ज ज्ञानी विविध पुद्गलकर्मधी बंधाय छे. १७२.

जे सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय वर्तता सुदृष्टिने,
उपयोगने प्रायोग्य बंधन कर्मभाव वडे करे. १७३.

अणभोग्य बनी उपभोग्य जे रीत थाय ते रीत बांधता,
ज्ञानावरण इत्यादि कर्मो सप्त-अष्ट प्रकारनां. १७४.

सत्ता विषे ते निरुपभोग्य ज, बाळ स्त्री ज्यम पुरुषने;
उपभोग्य बनतां तेह बांधे, युवती जेम पुरुषने. १७५.

आ कारणे सम्यक्त्वसंयुत जीव अणबंधक कह्या,
आस्रवभावअभावमां नहि प्रत्ययो बंधक कह्या. १७६.

नहि रागद्वेष, न मोह—अे आस्रव नथी सुदृष्टिने,
तेथी ज आस्रवभाव विण नहि प्रत्ययो हेतु बने; १७७.

हेतु चतुर्विध अष्टविध कर्मो तणां कारण कह्या,
तेनांय रागादिक कह्या, रागादि नहि त्यां बंध ना. १७८.

पुरुषे ग्रहेल अहार जे, उदराग्रिने संयोग ते
बहुविध मांस, वसा अने रुधिरादि भावे परिणमे; १७९.

त्यम ज्ञानीने पण प्रत्ययो जे पूर्वकाळनिबद्ध ते
बहुविध बांधे कर्म, जो जीव शुद्धनयपरिच्युत बने. १८०.



५. संवर अधिकार

उपयोगमां उपयोग, को उपयोग नहि क्रोधादिमां,
छे क्रोध क्रोध महीं ज, निश्चय क्रोध नहि उपयोगमां. १८१.

उपयोग छे नहि अष्टविध कर्मो अने नोकर्ममां,
कर्मो अने नोकर्म कई पण छे नहि उपयोगमां. १८२.

आवुं अविपरीत ज्ञान ज्यारे उद्भवे छे जीवने,
त्यारे न कई पण भाव ते उपयोगशुद्धात्मा करे. १८३.

ज्यम अग्रि तप्त सुवर्ण पण निज स्वर्णभाव नहीं तजे,
त्यम कर्मउदये तप्त पण ज्ञानी न ज्ञानीपणुं तजे. १८४.

जीव ज्ञानी जाणे आम, पण अज्ञानी राग ज जीव गणे,
आत्मस्वभाव-अजाण जे अज्ञानतम-आच्छादने. १८५.

जे शुद्ध जाणे आत्मने, ते शुद्ध आत्म ज मेळवे;
अणशुद्ध जाणे आत्मने, अणशुद्ध आत्म ज ते लहे. १८६.

पुण्यपापयोगी रोक्याने निज आत्मने आत्मा थकी,
दर्शन अने ज्ञाने ठरी, परद्रव्यइच्छा परिहरी, १८७.

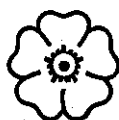
जे सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्मने आत्मा वडे,
—नहि कर्म के नोकर्म, चेतक चेततो ऐकत्वने, १८८.

ते आत्म ध्यातो, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी खरे,
बस अल्प काळे कर्मथी प्रविमुक्त आत्मने वरे. १८९.

रागादिना हेतु कहे सर्वज्ञ अध्यवसानने,
—मिथ्यात्व ने अज्ञान, अविरतभाव तेम ज योगने. १९०.

हेतुअभावे जरूर आस्रवरोध ज्ञानीने बने,
आस्रवभाव विना वळी निरोध कर्म तणो बने. १९१.

कर्मी तणा य अभावथी नोकर्मनु रोधन अने
नोकर्मना रोधन थकी संसारसंरोधन बने. १९२.



६. निर्जरा अधिकार

चेतन अचेतन द्रव्यनो उपभोग इंद्रियो वडे,
जे जे करे सुदृष्टि ते सौ निर्जराकारण बने. १६३.

वस्तु तणे उपभोग निश्चय सुख वा दुख थाय छे,
अे उदित सुखदुख भोगवे पछी निर्जरा थई जाय छे. १६४.

ज्यम झेरुना उपभोगथी पण वैद्य जन मरतो नथी,
त्यम कर्मउदयो भोगवे पण ज्ञानी बंधातो नथी. १६५.

ज्यम अरतिभावे मद्य पीतां मत्त जन बनतो नथी,
द्रव्योपभोग विषे अरत ज्ञानीय बंधातो नथी. १६६.

सेवे छतां नहि सेवतो, अणसेवतो सेवक बने,
प्रकरण तणी चेष्टा करे पण प्राकरण ज्यम नहि ठरे. १६७.

कर्मो तणो जे विविध उदयविपाक जिनवर वर्णव्यो,
ते मुज स्वभावो छे नहीं, हुं अेक ज्ञायकज्ञाव छुं. १६८.

पुद्गलकरमरूप रागनो ज विपाकरूप छे उदय आ,
आ छे नहीं मुज भाव, निश्चय अेक ज्ञायकभाव छुं. १६९.

सुदृष्टि अे रीत आत्मने ज्ञायकस्वभाव ज जाणतो,
ने उदय कर्मविपाकरूप ते तत्त्वज्ञायक छोडतो. २००.

अणुमात्र पण रागादिनो सद्भाव वर्ते जेहने,
ते सर्वआगमधर भले पण जाणतो नहि आत्मने; २०१.

नहि जाणतो ज्यां आत्मने ज, अनात्म पण नहि जाणतो,
ते केम होय सुदृष्टि जे जीव-अजीवने नहि जाणतो ? २०२.

जीवमां अपदभूत द्रव्यभावो छोडीने ग्रह तुं यथा,
स्थिर, नियत, अेक ज भाव जेह स्वभावरूप उपलभ्य आ. २०३.

मति, श्रुत, अवधि, मनः, केवल तेह पद अेक ज खरे,
आ ज्ञानपद परमार्थ छे जे पामी जीव मुक्ति लहे. २०४.

बहु लोक ज्ञानगुणे रहित आ पद नहीं पामी शके;
रे ! ग्रहण कर तुं नियत आ, जो कर्ममोक्षेच्छा तने. २०५.

आमां सदा प्रीतिवंत बन, आमां सदा संतुष्ट ने
आनाथी बन तुं तृप्त, तुजने सुख अहो ! उत्तम थशे. २०६.

‘परद्रव्य आ मुज द्रव्य’ अेवुं कोण ज्ञानी कहे अरे !
निज आत्मने निजनो परिग्रह जाणतो जे निश्चये ? २०७.

परिग्रह कदी मारो बने तो हुं अजीव बनुं खरे,
हुं तो खरे ज्ञाता ज, तेथी नहि परिग्रह मुज बने. २०८.

छेदाव, वा भेदाव, को लई जाव, नष्ट बनो भले,
वा अन्य को रीत जाव, पण परिग्रह नथी मारो खरे. २०९.

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पुण्यने,
तेथी न परिग्रही पुण्यनो ते, पुण्यनो ज्ञायक रहे. २१०.

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पापने,
तेथी न परिग्रही पापनो ते, पापनो ज्ञायक रहे. २११.

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे अशनने,
तेथी न परिग्रही अशननो ते, अशननो ज्ञायक रहे.. २१२.

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पानने,
तेथी न परिग्रही पाननो ते, पाननो ज्ञायक रहे. २१३.

अे आदि विधविध भाव बहु ज्ञानी न इच्छे सर्वने;
सर्वत्र आलंबन रहित बस नियत ज्ञायकभाव ते. २१४.

उत्पन्न उदयनो भोग नित्य वियोगभावे ज्ञानीने,
ने भावी कर्मोदय तणी कांक्षा नहीं ज्ञानी करे. २१५.

रे ! वेद्य वेदक भाव बन्ने समय समये विणसे,
—अे जाणतो ज्ञानी कदापि न उभयनी कांक्षा करे. २१६.

संसारदेहसंबंधी ने बंधोपभोगनिमित्त जे,
ते सर्व अध्यवसानउदये राग थाय न ज्ञानीने. २१७.

छो सर्व द्रव्ये रागवर्जक ज्ञानी कर्मनी मध्यमां,
पण रज थकी लेपाय नहि, ज्यम कनक कर्दममध्यमां. २१८.

पण सर्व द्रव्ये रागशील अज्ञानी कर्मनी मध्यमां,
ते कर्मरज लेपाय छे, ज्यम लोह कर्दममध्यमां. २१९.

ज्यम शंख विविध सचित्त, मिश्र, अचित्त द्रव्यो भोगवे,
पण शंखना शुक्लत्वने नहि कृष्ण कोई करी शके; २२०.

त्यम ज्ञानी विविध सचित्त, मिश्र, अचित्त द्रव्यो भोगवे,
पण ज्ञान ज्ञानी तणुं नहीं अज्ञान कोई करी शके. २२१.

- ज्यारे स्वयं ते शंख श्वेतस्वभाव निजनो छोडीने
पामे स्वयं कृष्णत्व, त्यारे छोडतो शुक्लत्वने; २२२.
- त्यमं ज्ञानी पण ज्यारे स्वयं निज छोडी ज्ञानस्वभावने
अज्ञानभावे परिणमे, अज्ञानता त्यारे लहे. २२३.
- ज्यम जगतमां को पुरुष वृत्तिनिमित्त सेवे भूपने,
तो भूप पण सुखजनक विधविध भोग आपे पुरुषने. २२४.
- त्यम जीवपुरुष पण कर्मरजनुं सुखअरथ सेवन करे,
तो कर्म पण सुखजनक विधविध भोग आपे जीवने. २२५.
- वळी ते ज नर ज्यम वृत्ति अर्थे भूपने सेवे नहीं,
तो भूप पण सुखजनक विधविध भोगने आपे नहीं; २२६.
- सुदृष्टिने त्यम विषय अर्थे कर्मरजसेवन नथी,
तो कर्म पण सुखजनक विधविध भोगने देतां नथी. २२७.
- समयक्त्ववंत जीवो निशंकित, तेथी छे निर्भय अने
छे सप्तभयप्रविमुक्त जेथी, तेथी ते निःशंक छे. २२८.
- जे कर्मबंधनमोहकर्ता पाद चारे छेदतो,
चिन्मूर्ति ते शंकारहित समकितदृष्टि जाणवो. २२९.
- जे कर्मफळ ने सर्व धर्म तणी न कांक्षा राखतो,
चिन्मूर्ति ते कांक्षारहित समकितदृष्टि जाणवो. २३०.
- सौ कोई धर्म विषे जुगुप्साभाव जे नहि धारतो,
चिन्मूर्ति निर्विचिकित्स समकितदृष्टि निश्चय जाणवो. २३१.

- संमूढ नहि जे सर्व भावे,—सत्य दृष्टि धारतो,
ते मूढदृष्टिरहित समकितदृष्टि निश्चय जाणवो. २३२.
- जे सिद्धभक्तिसहित छे, उपगूहक छे सौ धर्मनो,
चिन्मूर्ति ते उपगूहनकर समकितदृष्टि जाणवो. २३३.
- उन्मार्गगमने स्वात्मने पण मार्गमां जे स्थापतो,
चिन्मूर्ति ते स्थितिकरणयुत समकितदृष्टि जाणवो. २३४.
- जे मोक्षमार्गे 'साधु'त्रयनुं वत्सलत्व करे अहो !
चिन्मूर्ति ते वात्सल्ययुत समकितदृष्टि जाणवो. २३५.
- चिन्मूर्ति मन-रथपंथमां विद्यारथारूढ घूमतो,
ते जिनज्ञानप्रभावकर समकितदृष्टि जाणवो. २३६.



७. बंध अधिकार

- जेवी रीते को पुरुष पोते तेलनुं मर्दन करी,
व्यायाम करतो शस्त्रथी बहु रजभर्या स्थाने रही; २३७.
- वळी ताड, कदळी, वांस आदि छिन्नभिन्न करे अने
उपघात तेह सचित्त तेम अचित्त द्रव्य तणो करे. २३८.
- बहु जातनां करणो वडे उपघात करता तेहने,
निश्चय थकी चिंतन करो, रजबंध थाय शुं करणे? २३९.

अम जाणवुं निश्चय थकी—चीकणाई जे ते नर विषे रजबंधकारण ते ज छे, नहि कायचेष्टा शेष जे. २४०.

चेष्टा विविधमां वर्ततो अे रीत मिथ्यादृष्टि जे, उपयोगमां रागादि करतो रज थकी लेपाय ते. २४१.

जेवी रीते वळी ते ज नर ते तेल सर्व दूरे करी, व्यायाम करतो शस्त्रथी बहु रजभर्या स्थाने रही; २४२.

वळी ताड, कदळी, वांस आदि छिन्नभिन्न करे अने उपघात तेह सचित्त तेम अचित्त द्रव्य तणो करे. २४३.

बहु जातनां करणो वडे उपघात करता तेहने, निश्चय थकी चिंतन करो, रजबंध नहि शुं कारणे ? २४४.

अम जाणवुं निश्चय थकी—चीकणाई जे ते नर विषे रजबंधकारण ते ज छे, नहि कायचेष्टा शेष जे. २४५.

योगो विविधमां वर्ततो अे रीत सम्यग्दृष्टि जे, रागादि उपयोगे न करतो रजथी नव लेपाय ते. २४६.

जे मानतो—हुं मारुं ने पर जीव मारे मुजने, ते मूढ छे, अज्ञानी छे, विपरीत अेथी ज्ञानी छे. २४७.

छे आयुक्षयथी मरण जीवनुं अम जिनदेवे कह्युं, तुं आयु तो हरतो नथी, तें मरण क्यम तेनुं कर्णुं ? २४८.

छे आयुक्षयथी मरण जीवनुं अम जिनदेवे कह्युं, ते आयु तुज हरता नथी, तो मरण क्यम तारुं कर्णुं ? २४९.

જે માનતો—હું જિવાડું ને પર જીવ જિવાડે મુજને,
તે મૂઢ છે, અજ્ઞાની છે, વિપરીત એથી જ્ઞાની છે. ૨૫૦.

છે આયુ-ઉદયે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,
તું આયુ તો દેતો નથી, તેં જીવન ક્યમ તેનું કર્યું ? ૨૫૧.

છે આયુ-ઉદયે જીવન જીવનું એમ સર્વજ્ઞે કહ્યું,
તે આયુ તુજ દેતા નથી, તો જીવન ક્યમ તારું કર્યું ? ૨૫૨.

જે માનતો—મુજથી દુખીસુખી હું કરું પર જીવને,
તે મૂઢ છે, અજ્ઞાની છે, વિપરીત એથી જ્ઞાની છે. ૨૫૩.

જ્યાં કર્મ-ઉદયે જીવ સર્વે દુખિત તેમ સુખી થતા,
તું કર્મ તો દેતો નથી, તેં કેમ દુખિત-સુખી કર્યા ? ૨૫૪.

જ્યાં કર્મ-ઉદયે જીવ સર્વે દુખિત તેમ સુખી બને,
તે કર્મ તુજ દેતા નથી, તો દુખિત કેમ કર્યો તને ? ૨૫૫.

જ્યાં કર્મ-ઉદયે જીવ સર્વે દુખિત તેમ સુખી બને,
તે કર્મ તુજ દેતા નથી, તો સુખિત કેમ કર્યો તને ? ૨૫૬.

મરતો અને જે દુખી થતો—સૌ કર્મના ઉદયે બને,
તેથી 'હણ્યો મેં, દુખી કર્યો'—તુજ મત શું નહિ મિથ્યા યે ?

વળી નવ મરે, નવ દુખી બને, તે કર્મના ઉદયે યે,
'મેં નવ હણ્યો, નવ દુખી કર્યો'—તુજ મત શું નહિ મિથ્યા યે ?

આ બુદ્ધિ જે તુજ—'દુખિત તેમ સુખી કરું છું જીવને',
તે મૂઢ મતિ તારી અરે ! શુભ અશુભ બાંધે કર્મને. ૨૫૬.

- करतो तुं अध्यवसान—‘दुखित-सुखी करुं छुं जीवने’,
ते पापनुं बंधक अगर तो पुण्यनुं बंधक बने. २६०.
- करतो तुं अध्यवसान—‘मारुं जिवाडुं छुं पर जीवने’,
ते पापनुं बंधक अगर तो पुण्यनुं बंधक बने. २६१.
- मारो—न मारो जीवने, छे बंध अध्यवसानथी,
—आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चयनय थकी. २६२.
- अेम अलीकमांही, अदत्तमां, अब्रह्म ने परिग्रह विषे
जे थाय अध्यवसान तेथी पापबंधन थाय छे. २६३.
- अे रीत सत्ये, दत्तमां वळी ब्रह्म ने अपरिग्रहे
जे थाय अध्यवसान तेथी पुण्यबंधन थाय छे. २६४.
- जे थाय अध्यवसान जीवने, वस्तु-आश्रित ते बने,
पण वस्तुथी नथी बंध, अध्यवसानमात्रथी बंध छे. २६५.
- करुं छुं दुखी-सुखी जीवने, वळी बद्ध-मुक्त करुं अरे !
आ मूढ मति तुज छे निरर्थक, तेथी छे मिथ्या खरे. २६६.
- सौ जीव अध्यवसानकारण कर्मथी बंधाय ज्यां
ने मोक्षमार्गे स्थित जीवो मुकाय, तुं शुं करे भला ? २६७.
- तिर्यच, नारक, देव, मानव, पुण्य-पाप विविध जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६८.
- वळी अेम धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक-अलोक जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६९.

એ આદિ અધ્યવસાન વિધવિધ વર્તતાં નહિ જેમને,
તે મુનિવરો લેપાય નહિ શુભ કે અશુભ કર્મો વડે. ૨૭૦.

બુદ્ધિ, મતિ, વ્યવસાય, અધ્યવસાન, વઢી વિજ્ઞાન ને
પરિણામે, ચિત્ત ને ભાવ—શબ્દો સર્વ આ એકાર્થ છે. ૨૭૧.

વ્યવહારનય એ રીત જાણ નિષિદ્ધ નિશ્ચયનય થકી;
નિશ્ચયનયાશ્રિત મુનિવરો પ્રાપ્તિ કરે નિર્વાણની. ૨૭૨.

જિનવરકહેલાં વ્રત, સમિતિ, ગુપ્તિ, વઢી તપ-શીલને
કરતાં છતાંય અભવ્ય જીવ અજ્ઞાની મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. ૨૭૩.

મુક્તિ તળી શ્રદ્ધારહિત અભવ્ય જીવ શાસ્ત્રો ભળે,
પણ જ્ઞાનની શ્રદ્ધારહિતને પઠન એ નહિ ગુણ કરે. ૨૭૪.

તે ધર્મને શ્રદ્ધે, પ્રતીત, રુચિ અને સ્પર્શન કરે,
તે ભોગહેતુ ધર્મને, નહિ કર્મક્ષયના હેતુને. ૨૭૫.

‘આચાર’ આદિ જ્ઞાન છે, જીવાદિ દર્શન જાણવું,
ષટ્જીવનિકાય ચરિત છે,—એ કથન નય વ્યવહારનું. ૨૭૬.

મુજ આત્મ નિશ્ચય જ્ઞાન છે, મુજ આત્મ દર્શન ચરિત છે,
મુજ આત્મ પ્રત્યાહ્યાન ને મુજ આત્મ સંવર યોગ છે. ૨૭૭.

જ્યમ સ્ફટિકમણિ છે શુદ્ધ, રક્તરૂપે સ્વયં નહિ પરિણમે,
પણ અન્ય જે રક્તાદિ દ્રવ્યો તે વડે રાતો બને; ૨૭૮.

ત્યમ ‘જ્ઞાની’ પણ છે શુદ્ધ, રાગરૂપે સ્વયં નહિ પરિણમે,
પણ અન્ય જે રાગાદિ દોષો તે વડે રાગી બને. ૨૭૯.

कदी रागद्वेषविमोह अगर कषायभावो निज विषे
ज्ञानी स्वयं करतो नथी, तेथी न तत्कारक ठरे. २८०.

पण राग-द्वेष-कषायकर्मनिमित्त थाये भाव जे,
ते-रूप जे प्रणमे, फरी ते बांधतो रागादिने. २८१.

अेम राग-द्वेष-कषायकर्मनिमित्त थाये भाव जे,
ते-रूप आत्मा परिणमे, ते बांधतो रागादिने. २८२.

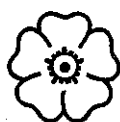
अणप्रतिक्रमण द्वयविध, अणपचखाण पण द्वयविध छे,
—आ रीतना उपदेशथी वर्ण्यो अकारक जीवने. २८३.

अणप्रतिक्रमण बे—द्रव्यभावे, अेम अणपचखाण छे,
—आ रीतना उपदेशथी वर्ण्यो अकारक जीवने. २८४.

अणप्रतिक्रमण वळी अेम अणपचखाण द्रव्यनुं, भावनुं,
आत्मा करे छे त्यां लगी कर्ता बने छे जाणवुं. २८५.

आधाकरम इत्यादि पुद्गलद्रव्यना आ दोष जे,
ते केम 'ज्ञानी' करे सदा परद्रव्यना जे गुण छे? २८६.

उद्देशी तेम ज अधःकर्मी पौद्गलिक आ द्रव्य जे,
ते केम मुजकृत होय नित्य अजीव भाख्युं जेहने ? २८७.



८. मोक्ष अधिकार

ज्यम पुरुष को बंधन महीं प्रतिबद्ध जे चिरकाळनो,
ते तीव्र-मंद स्वभाव तेम ज काळ जाणे बंधनो. २८८.

पण जो करे नहि छेद तो न मुकाय, बंधनवश रहे,
ने काळ बहुये जाय तोपण मुक्त ते नर नहि बने; २८९.

त्यम कर्मबंधननां प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभागने
जाणे छतां न मुकाय जीव, जो शुद्ध तो ज मुकाय छे. २९०.

बंधन महीं जे बद्ध ते नहि बंधचिंताथी छूटे,
त्यम जीव पण बंधो तणी चिंता कर्याथी नव छूटे. २९१.

बंधन महीं जे बद्ध ते नर बंधछेदनथी छूटे,
त्यम जीव पण बंधो तणुं छेदन करी मुक्ति लहे. २९२.

बंधो तणो जाणी स्वभाव, स्वभाव जाणी आत्मनो,
जे बंध मांही विरक्त थाये, कर्ममोक्ष करे अहो ! २९३.

जीव बंध बन्ने, नियत निज निज लक्षणे छेदाय छे,
प्रज्ञाक्षीणी थकी छेदतां बन्ने जुदा पडी जाय छे. २९४.

जीव बंध ज्यां छेदाय अे रीत नियत निज निज लक्षणे,
त्यां छोडवो अे बंधने, जीव ग्रहण करवो शुद्धने. २९५.

अे जीव केम ग्रहाय ? जीव ग्रहाय छे प्रज्ञा वडे;
प्रज्ञाथी ज्यम जुदो कर्यो त्यम ग्रहण पण प्रज्ञा वडे. २९६.

प्रज्ञाथी ग्रहवो—निश्चये जे चेतनारो ते ज हुं,
बाकी बधा जे भाव ते सौ मुज थकी पर—जाणवुं. २६७.

प्रज्ञाथी ग्रहवो—निश्चये जे देखनारो ते ज हुं,
बाकी बधा जे भाव ते सौ मुज थकी पर—जाणवुं. २६८.

प्रज्ञाथी ग्रहवो—निश्चये जे जाणनारो ते ज हुं,
बाकी बधा जे भाव ते सौ मुज थकी पर—जाणवुं. २६९.

सौ भाव जे परकीय जाणे, शुद्ध जाणे आत्मने,
ते कोण ज्ञानी 'मारुं आ' अेवुं वचन बोले खरे? ३००.

अपराध चौर्यादिक करे जे पुरुष ते शंकित फरे,
के लोकमां फरतां रखे को चोर जाणी बांधशे; ३०१.

अपराध जे करतो नथी, निःशंक लोक विषे फरे,
'बंधाउं हुं' अेवी कदी चिंता न थाये तेहने. ३०२.

त्यम आतमा अपराधी 'हुं बंधाउं' अेम सशंक छे,
ने निरपराधी जीव 'नहि बंधाउं' अेम निःशंक छे. ३०३.

संसिद्धि, सिद्धि, राध, आराधित, साधित—अेक छे,
अे राधथी जे रहित छे ते आतमा अपराध छे; ३०४.

वळी आतमा जे निरपराधी ते निःशंकित होय छे,
वर्ते सदा आराधनाथी जाणतो 'हुं' आत्मने. ३०५.

प्रतिक्रमण, ने प्रतिसरण, वळी परिहरण, निवृत्ति, धारणा,
वळी शुद्धि, निंदा, गर्हणा—अे अष्टविध विषकुंभ छे. ३०६.

अणप्रतिक्रमण, अणप्रतिसरण, अणपरिहरण, अणधारणा,
अनिवृत्ति, अणगर्हा, अनिंद, अशुद्धि—अमृतकुंभ छे. ३०७.



६. सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

जे द्रव्य ऊपजे जे गुणोथी तेथी जाण अनन्य ते,
ज्यम जगतमां कटकादि पर्यायोथी कनक अनन्य छे. ३०८.

जीव-अजीवना परिणाम जे दर्शाविया सूत्रो महीं,
ते जीव अगर अजीव जाण अनन्य ते परिणामथी. ३०९.

ऊपजे न आत्मा कोईथी तेथी न आत्मा कार्य छे,
उपजावतो नथी कोईने तेथी न कारण पण ठरे. ३१०.

रे ! कर्म-आश्रित होय कर्ता, कर्म पण कर्ता तणे
आश्रितपणे ऊपजे नियमथी, सिद्धि नव बीजी दीसे. ३११.

पण जीव प्रकृतिना निमित्ते ऊपजे विणसे अरे !
ने प्रकृति पण जीवना निमित्त ऊपजे विणसे; ३१२.

अन्योन्यना निमित्त अे रीत बंध बेउ तणो बने
—आत्मा अने प्रकृति तणो, संसार तेथी थाय छे. ३१३.

उत्पाद-व्यय प्रकृतिनिमित्ते ज्यां लगी नहि परितजे,
अज्ञानी, मिथ्यात्वी, असंयत त्यां लगी आ जीव रहे; ३१४.

आ आत्मा ज्यारे करमनुं फळ अनंतुं परितजे,
ज्ञायक तथा दर्शक तथा मुनि तेह कर्मविमुक्त छे. ३१५.

अज्ञानी वेदे कर्मफळ प्रकृतिस्वभावे स्थित रही,
ने ज्ञानी तो जाणे उदयगत कर्मफळ, वेदे नहीं. ३१६.

सुरीते भणीने शास्त्र पण प्रकृति अभव्य नहीं तजे,
साकरसहित क्षीरपानथी पण सर्प नहि निर्विष बने. ३१७.

निर्वेदने पामेल ज्ञानी कर्मफळने जाणतो,
—कडवा मधुर बहुविधने, तेथी अवेदक छे अहो ! ३१८.

करतो नथी, नथी वेदतो ज्ञानी करम बहुविधने,
बस जाणतो अे बंध तेम ज कर्मफळ शुभ-अशुभने. ३१९.

ज्यम नेत्र, तेम ज ज्ञान नथी कारक, नथी वेदक अरे !
जाणे ज कर्मोदय, निरजरा, बंध तेम ज मोक्षने. ३२०.

ज्यम लोक माने ' देव, नारक आदि जीव विष्णु करे ',
त्यम श्रमण पण माने कदी ' आत्मा करे षट् कायने ', ३२१.

तो लोक-मुनि सिद्धांत अेक ज, भेद तेमां नव दीसे,
विष्णुं करे ज्यम लोकमतमां, श्रमणमत आत्मा करे; ३२२.

अे रीत लोक मुनि उभयनो मोक्ष कोई नहीं दीसे,
—जे देव, मनुज, असुरना त्रण लोकने नित्ये करे. ३२३.

व्यवहारमूढ अतत्त्वविद् परद्रव्यने ' मारुं ' कहे,
' परमाणुमात्र न मारुं ' ज्ञानी जाणता निश्चय वडे. ३२४.

ज्यम पुरुष कोई कहे 'अमारुं गाम, पुर ने देश छे',
पण ते नथी तेनां, अरे ! जीव मोहथी 'मारां' कहे; ३२५.

अेवी ज रीत जे ज्ञानी पण 'मुज' जाणतो परद्रव्यने,
निजरूप करे परद्रव्यने, ते जरूर मिथ्यात्वी बने. ३२६.

तेथी 'न मारुं' जाणी जीव, परद्रव्यमां आ उभयनी
कर्तृत्वबुद्धि जाणतो, जाणे सुदृष्टिरहितनी. ३२७.

जो प्रकृति मिथ्यात्वनी मिथ्यात्वी करती आत्मने,
तो तो अचेतन प्रकृति कारक बने तुज मत विषे ! ३२८.

अथवा करे जो जीव पुद्गलद्रव्यना मिथ्यात्वने,
तो तो ठरे मिथ्यात्वी पुद्गलद्रव्य, आत्मा नव ठरे ! ३२९.

जो जीव अने प्रकृति करे मिथ्यात्व पुद्गलद्रव्यने,
तो उभयकृत जे होय तेनुं फळ उभय पण भोगवे ! ३३०.

जो नहि प्रकृति, नहि जीव करे मिथ्यात्व पुद्गलद्रव्यने,
पुद्गलदरव मिथ्यात्व वणकृत !—अे शुं नहि मिथ्या खरे ? ३३१.

“कर्मो करे अज्ञानी तेम ज ज्ञानी पण कर्मो करे,
कर्मो सुवाडे तेम वळी कर्मो जगाडे जीवने; ३३२.

कर्मो करे सुखी तेम वळी कर्मो दुखी जीवने करे,
कर्मो करे मिथ्यात्वी तेम असंयमी कर्मो करे; ३३३.

कर्मो भमावे ऊर्ध्व लोके, अधः ने तिर्यक् विषे,
जे कांई पण शुभ के अशुभ ते सर्वने कर्म ज करे. ३३४.

कर्म ज करे छे, कर्म अे आपे, हरे,—सघळुं करे,
तेथी ठरे छे अेम के आत्मा अकारक सर्व छे. ३३५.

वळी 'पुरुषकर्म स्त्रीने अने स्त्रीकर्म इच्छे पुरुषने'
—अेवी श्रुति आचार्य केरी परंपरा उतरेल छे. ३३६.

अे रीत 'कर्म ज कर्मने इच्छे'—कह्युं छे श्रुतमां,
तेथी न को पण जीव अब्रह्मचारी अम उपदेशमां. ३३७.

वळी जे हणे परने, हणाये परथी तेह प्रकृति छे,
—अे अर्थमां परघात नामनुं नामकर्म कथाय छे. ३३८.

अे रीत 'कर्म ज कर्मने हणतुं'—कह्युं छे श्रुतमां,
तेथी न को पण जीव छे हणनार अम उपदेशमां." ३३९.

अेम सांख्यनो उपदेश आवो, जे श्रमण प्ररूपण करे,
तेना मते प्रकृति करे छे, जीव अकारक सर्व छे ! ३४०.

अथवा तुं माने 'आतमा मारो करे निज आत्मने',
तो अेवुं तुज मंतव्य पण मिथ्या स्वभाव ज तुज खरे. ३४१.

जीव नित्य तेम वळी असंख्यप्रदेशी दर्शित समयमां,
तेनाथी तेने हीन तेम अधिक करवो शक्य ना. ३४२.

विस्तारथीय जीवरूप जीवनुं लोकमात्र ज छे खरे,
शुं तेथी ते हीन-अधिक बनतो ? केम करतो द्रव्यने ? ३४३.

माने तुं—'ज्ञायक भाव तो ज्ञानस्वभावे स्थित रहे',
तो अेम पण आत्मा स्वयं निज आतमाने नहि करे. ३४४.

पर्याय कंडकथी विणसे जीव, कंडकथी नहि विणसे,
तेथी करे छे ते ज के बीजो—नहीं अकांत छे. ३४५.

पर्याय कंडकथी विणसे जीव, कंडकथी नहि विणसे,
जीव तेथी वेदे ते ज के बीजो—नहीं अकांत छे. ३४६.

जीव जे करे ते भोगवे नहि —जेहनो सिद्धांत अे,
ते जीव मिथ्यादृष्टि छे, अर्हतना मतनो नथी. ३४७.

जीव अन्य करतो, अन्य वेदे —जेहनो सिद्धांत अे,
ते जीव मिथ्यादृष्टि छे, अर्हतना मतनो नथी. ३४८.

ज्यम शिल्पी कर्म करे परंतु ते नहीं तन्मय बने,
त्यम जीव पण कर्मो करे पण ते नहीं तन्मय बने. ३४९.

ज्यम शिल्पी करण वडे करे पण ते नहीं तन्मय बने,
त्यम जीव करण वडे करे पण ते नहीं तन्मय बने. ३५०.

ज्यम शिल्पी करण ग्रहे परंतु ते नहीं तन्मय बने,
त्यम जीव पण करणो ग्रहे पण ते नहीं तन्मय बने. ३५१.

शिल्पी करमफळ भोगवे पण ते नहीं तन्मय बने,
त्यम जीव करमफळ भोगवे पण ते नहीं तन्मय बने. ३५२.

—अे रीत मत व्यवहारनो संक्षेपथी वक्तव्य छे;
सांभळ वचन निश्चय तणुं परिणामविषयक जेह छे. ३५३.

शिल्पी करे चेष्टा अने तेनाथी तेह अनन्य छे,
त्यम जीव कर्म करे अने तेनाथी तेह अनन्य छे. ३५४.

चेष्टा करंतो शिल्पी जेम दुखित थाय . निरंतरे,
ने दुखथी तेह अनन्य, त्यम जीव चेष्टमान दुखी बने. ३५५.

ज्यम सेटिका नथी पर तणी, छे सेटिका बस सेटिका,
ज्ञायक नथी त्यम पर तणो, ज्ञायक खरे ज्ञायक तथा; ३५६.

ज्यम सेटिका नथी पर तणी, छे सेटिका बस सेटिका,
दर्शक नथी त्यम पर तणो, दर्शक खरे दर्शक तथा; ३५७.

ज्यम सेटिका नथी पर तणी, छे सेटिका बस सेटिका,
संयत नथी त्यम पर तणो, संयत खरे संयत तथा; ३५८.

ज्यम सेटिका नथी पर तणी, छे सेटिका बस सेटिका,
दर्शन नथी त्यम पर तणुं, दर्शन खरे दर्शन तथा. ३५९.

अेम ज्ञान-दर्शन-चरितविषयक कथन. निश्चयनय तणुं;
सांभळ कथन संक्षेपथी अेना विषे व्यवहारनुं. ३६०.

ज्यम निज स्वभावथी सेटिका परद्रव्यने धोळुं करे,
ज्ञाताय अे रीत जाणतो निज भावथी परद्रव्यने; ३६१.

ज्यम निज स्वभावथी सेटिका परद्रव्यने धोळुं करे,
आत्माय अे रीत देखतो निज भावथी परद्रव्यने; ३६२.

ज्यम निज स्वभावथी सेटिका परद्रव्यने धोळुं करे,
ज्ञाताय अे रीत त्यागतो निज भावथी परद्रव्यने; ३६३.

ज्यम निज स्वभावथी सेटिका परद्रव्यने धोळुं करे,
सुदृष्टि अे रीत श्रद्धतो निज भावथी परद्रव्यने. ३६४.

अेम ज्ञान-दर्शन-चरितमां निर्णय कह्यो व्यवहारनो,
ने अन्य पर्यायो विषे पण अे ज रीते जाणवो. ३६५.

चारित्र-दर्शन-ज्ञान जरीये नहि अचेतन विषयमां,
ते कारणे आ आतमा शुं हणी शके ते विषयमां? ३६६.

चारित्र-दर्शन-ज्ञान जरीये नहि अचेतन कर्ममां,
ते कारणे आ आतमा शुं हणी शके ते कर्ममां? ३६७.

चारित्र-दर्शन-ज्ञान जरीये नहि अचेतन कायमां,
ते कारणे आ आतमा शुं हणी शके ते कायमां? ३६८.

छे ज्ञाननो, दर्शन तणो, उपघात भाख्यो चरितनो,
त्यां कांई पण भाख्यो नथी उपघात पुद्गलद्रव्यनो. ३६९.

जे गुण जीव तणा, खरे ते कोई नहि परद्रव्यमां,
ते कारणे विषयो प्रति सुदृष्टि जीवने राग ना. ३७०.

वळी राग, द्वेष, विमोह तो जीवना अनन्य परिणाम छे,
ते कारणे शब्दादि विषयोमां नहीं रागादि छे. ३७१.

को द्रव्य बीजा द्रव्यने उत्पाद नहि गुणनो करे,
तेथी बधांये द्रव्य निज स्वभावथी ऊपजे खरे. ३७२.

- रे ! पुद्गलो बहुविध निंदा-स्तुतिवचनरूप परिणमे,
तेने सुणी, 'मुजने कहुं' गणी, रोष तोष जीवो करे. ३७३.
- पुद्गलदरव शब्दत्वपरिणत, तेहनो गुण अन्य छे,
तो नव कहुं कई पण तने, हे अबुध ! रोष तुं क्यम करे? ३७४.
- शुभ के अशुभ जे शब्द ते 'तुं सुण मने' न तने कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये कर्णगोचर शब्दने; ३७५.
- शुभ के अशुभ जे रूप ते 'तुं जो मने' न तने कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये चक्षुगोचर रूपने; ३७६.
- शुभ के अशुभ जे गंध ते 'तुं सूंघ मुजने' नव कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये घ्राणगोचर गंधने; ३७७.
- शुभ के अशुभ रस जेह ते 'तुं चाख मुजने' नव कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये रसनगोचर रस अरे ! ३७८.
- शुभ के अशुभ जे स्पर्श ते 'तुं स्पर्श मुजने' नव कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये कायगोचर स्पर्शने; ३७९.
- शुभ के अशुभ जे गुण ते 'तुं जाण मुजने' नव कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये बुद्धिगोचर गुणने; ३८०.
- शुभ के अशुभ जे द्रव्य ते 'तुं जाण मुजने' नव कहे,
ने जीव पण ग्रहवा न जाये बुद्धिगोचर द्रव्यने; ३८१.
- आ जाणीने पण मूढ जीव पामे नहीं उपशम अरे !
शिव बुद्धिने पामेल नहि अे पर ग्रहण करवा चहे. ३८२.

- शुभ ने अशुभ अनेकविध पूर्वे करेलुं कर्म जे,
तेथी निवर्ते आत्मने, ते आतमा प्रतिक्रमण छे; ३८३.
- शुभ ने अशुभ भावी करम जे भावमां बंधाय छे,
तेथी निवर्तन जे करे, ते आतमा पचखाण छे; ३८४.
- शुभ ने अशुभ अनेकविध छे वर्तमाने उदित जे,
ते दोषने जे चेततो, ते जीव आलोचन खरे. ३८५.
- पचखाण नित्य करे अने प्रतिक्रमण जे नित्ये करे,
नित्ये करे आलोचना, ते आतमा चारित्र छे. ३८६.
- जे कर्मफळने वेदतो निजरूप करमफळने करे,
ते फरीय बांधे अष्टविधना कर्मने—दुखबीजने; ३८७.
- जे कर्मफळने वेदतो जाणे 'करमफळ में कर्यु',
ते फरीय बांधे अष्टविधना कर्मने—दुखबीजने; ३८८.
- जे कर्मफळने वेदतो आत्मा सुखी-दुखी थाय छे,
ते फरीय बांधे अष्टविधना कर्मने—दुखबीजने. ३८९.
- रे! शास्त्र ते नथी ज्ञान, जेथी शास्त्र कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, शास्त्र जुदुं — जिन कहे; ३९०.
- रे! शब्द ते नथी ज्ञान, जेथी शब्द कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, शब्द जुदो जिन कहे; ३९१.
- रे! रूप ते नथी ज्ञान, जेथी रूप कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, रूप जुदुं—जिन कहे; ३९२.

रे ! वर्ण ते नथी ज्ञान, जेथी वर्ण कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, वर्ण जुदो—जिन कहे; ३६३.

रे ! गंध ते नथी ज्ञान, जेथी गंध कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, गंध जुदी—जिन कहे; ३६४.

रे ! रस नथी कंई ज्ञान, जेथी रस कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, रस जुदो—जिनवर कहे; ३६५.

रे ! स्पर्श ते नथी ज्ञान, जेथी स्पर्श कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, स्पर्श जुदो—जिन कहे; ३६६.

रे ! कर्म ते नथी ज्ञान, जेथी कर्म कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, कर्म जुदुं—जिन कहे; ३६७.

रे ! धर्म ते नथी ज्ञान, जेथी धर्म कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, धर्म जुदो—जिन कहे; ३६८.

अधर्म ते नथी ज्ञान, जेथी अधर्म कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, अधर्म जुदो—जिन कहे; ३६९.

रे ! काळ ते नथी ज्ञान, जेथी काळ कंई जाणे नहीं,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, काळ जुदो—जिन कहे; ४००.

आकाश ते नथी ज्ञान, अे आकाश कंई जाणे नहीं,
ते कारणे आकाश जुदुं, ज्ञान जुदुं—जिन कहे; ४०१.

नहि ज्ञान अध्यवसान छे, जेथी अचेतन तेह छे,
ते कारणे छे ज्ञान जुदुं, जुदुं अध्यवसान छे. ४०२.

- रे ! सर्वदा जाणे ज तेथी जीव ज्ञायक ज्ञानी छे,
ने ज्ञान छे ज्ञायकथी अव्यतिरिक्त ईम ज्ञातव्य छे. ४०३.
- सम्यक्त्व, ने संयम, तथा पूर्वांगगत सूत्रो, अने
धर्माधरम, दीक्षा वळी, बुध पुरुष माने ज्ञानने. ४०४.
- अम आतमा जेनो अमूर्तिक ते नथी आ'रक खरे,
पुद्गलमयी छे आ'र तेथी आ'र तो मूर्तिक खरे. ४०५.
- जे द्रव्य छे पर तेहने न ग्रही, न छोडी शकाय छे,
अेवो ज तेनो गुण को प्रायोगी ने वैस्त्रसिक छे. ४०६.
- तेथी खरे जे शुद्ध आत्मा ते नहीं कई पण ग्रहे,
छोडे नहीं वळी कांई पण जीव ने अजीव द्रव्यो विषे. ४०७.
- बहुविधनां मुनिलिंगने अथवा गृहस्थीलिंगने
ग्रहीने कहे छे मूढजन 'आ लिंग मुक्तिमार्ग छे'. ४०८.
- पण लिंग मुक्तिमार्ग नहि, अर्हत निर्मम देहमां
बस लिंग छोडी ज्ञान ने चारित्र, दर्शन सेवता. ४०९.
- मुनिलिंग ने गृहीलिंग—अे लिंगो न मुक्तिमार्ग छे;
चारित्र-दर्शन-ज्ञानने बस मोक्षमार्ग जिनो कहे. ४१०.
- तेथी तजी सागार के अणगार-धारित लिंगने,
चारित्र-दर्शन-ज्ञानमां तुं जोड रे ! निज आत्मने. ४११.
- तुं स्थाप निजने मोक्षपंथे, ध्या, अनुभव तेहने,
तेमां ज नित्य विहार कर, नहि विहार परद्रव्यो विषे. ४१२.

बहुविधनां मुनिलिंगमां अथवा गृहीलिंगो विषे
ममता करे, तेणे नथी जाण्यो 'समयना सार'ने. ४१३.

व्यवहारनय अे उभय लिंगो मोक्षपंथ विषे कहे,
निश्चय नहीं माने कदी को लिंग मुक्तिपथ विषे. ४१४.

आ समयप्राभृत पठन करीने, अर्थ-तत्त्वथी जाणीने,
ठरशे अरथमां आतमा जे, सौख्य उत्तम ते थशे. ४१५.



ॐ

श्री

प्रवचनसार

(पद्यानुवाद)

१. ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन

(हरिगीत)

- सुर-असुर-नरपतिबंधने, प्रविनष्टघातिकर्मने,
प्रणमन करुं हुं धर्मकर्ता तीर्थ श्री महावीरने; १.
- वळी शेष तीर्थकर अने सौ सिद्ध शुद्धास्तित्वने,
मुनि ज्ञान-दृग-चारित्र-तप-वीर्याचरणसंयुक्तने. २.
- ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने,
वंदुं वळी हुं मनुष्यक्षेत्रे वर्तता अर्हंतने. ३.
- अर्हंतने, श्री सिद्धनेय नमस्करण करी अे रीते,
गणधर अने अध्यापकोने, सर्वसाधुसमूहने; ४.
- तसु शुद्धदर्शनज्ञानमुख्य पवित्र आश्रम पामीने,
प्राप्ति करुं हुं साम्यनी, जेनाथी शिवप्राप्ति बने. ५.

- सुर-असुर-मनुजेन्द्रो तणा विभवो सहित निर्वाणनी
प्राप्ति करे चारित्रथी जीव ज्ञानदर्शनमुख्यथी. ६.
- चारित्र छे ते धर्म छे, जे धर्म छे ते साम्य छे;
ने साम्य जीवनो मोहक्षोभविहीन निज परिणाम छे. ७.
- जे भावमां प्रणमे दरव, ते काळ तन्मय ते कह्युं;
जीवद्रव्य तेथी धर्ममां प्रणमेल धर्म ज जाणवुं. ८.
- शुभ के अशुभमां प्रणमतां शुभ के अशुभ आत्मा बने,
शुद्धे प्रणमतां शुद्ध, परिणामस्वभावी होईने. ९.
- परिणाम विण न पदार्थ, ने न पदार्थ विण परिणाम छे;
गुण-द्रव्य-पर्ययस्थित ने अस्तित्वसिद्ध पदार्थ छे. १०.
- जो धर्मपरिणतस्वरूप जीव शुद्धोपयोगी होय तो
ते पामतो निर्वाण सुख, ने स्वर्गसुख शुभयुक्त जो. ११.
- अशुभोदये आत्मा कुनर, तिर्यच ने नारकपणे
नित्ये सहस्र दुखे पीडित संसारमां अति अति भमे. १२.
- अत्यंत, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुप, अनंत ने
विच्छेदहीन छे सुख अहो ! शुद्धोपयोगप्रसिद्धने. १३.
- सुविदितसूत्रपदार्थ, संयमतप सहित, वीतराग ने
सुखदुःखमां सम श्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कहे. १४.
- जे उपयोगविशुद्ध ते मोहादिघातिरज थकी
स्वयमेव रहित थयो थको ज्ञेयान्तने पामे सही. १५.

- सर्वज्ञ, लब्धस्वभाव ने त्रिजगेन्द्रपूजित अे रीते स्वयमेव जीव थयो थको तेने स्वयंभू जिनो कहे. १६.
- व्ययहीन छे उत्पाद ने उत्पादहीन विनाश छे, तेने ज वळी उत्पादध्रौव्यविनाशनो समवाय छे. १७.
- उत्पाद तेम विनाश छे सौ कोई वस्तुमात्रने, वळी कोई पर्ययथी दरेक पदार्थ छे सद्भूत खरे. १८.
- प्रक्षीणघातिकर्म, अनहदवीर्य, अधिकप्रकाश ने इंद्रिय-अतीत थयेल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे. १९.
- कंई देहगत नथी सुख के नथी दुःख केवळज्ञानीने, जेथी अतीन्द्रियता थई ते कारणे अे जाणजे. २०.
- प्रत्यक्ष छे सौ द्रव्यपर्यय ज्ञान-परिणमनारने; जाणे नहीं ते तेमने अवग्रह-ईहादि क्रिया वडे. २१.
- न परोक्ष कंई पण सर्वतः सर्वाक्षगुणसमृद्धने, इंद्रिय-अतीत सदैव ने स्वयमेव ज्ञान थयेलने. २२.
- जीवद्रव्य ज्ञानप्रमाण भाख्युं, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण छे; ने ज्ञेय लोकालोक तेथी सर्वगत अे ज्ञान छे. २३.
- जीवद्रव्य ज्ञानप्रमाण नहि—अे मान्यता छे जेहने, तेना मते जीव ज्ञानथी हीन के अधिक अवश्य टै. २४.
- जो हीन आत्मा होय, नव जाणे अचेतन ज्ञान अे, ने अधिक ज्ञानथी होय तो वण ज्ञान क्यम जाणे अरे? २५.

- छे सर्वगत जिनवर अने सौ अर्थ जिनवरप्राप्त छे,
जिन ज्ञानमय ने सर्व अर्थो विषय जिनना होईने. २६.
- छे ज्ञान आत्मा जिनमते; आत्मा विना नहि ज्ञान छे,
ते कारणे छे ज्ञान जीव, जीव ज्ञान छे वा अन्य छे. २७.
- छे 'ज्ञानी' ज्ञानस्वभाव, अर्थो ज्ञेयरूप छे, 'ज्ञानी'ना,
ज्यम रूप छे नेत्रो तणां, नहि वर्तता अन्योन्यमां. २८.
- ज्ञेये प्रविष्ट न, अणप्रविष्ट न, जाणतो जग सर्वने
नित्ये अतीन्द्रिय आत्मा, ज्यम नेत्र जाणे रूपने. २९.
- ज्यम दूधमां स्थित इन्द्रनीलमणि स्वकीय प्रभा वडे
दूधने विषे व्यापी रहे, त्यम ज्ञान पण अर्थो विषे. ३०.
- नव होय अर्थो ज्ञानमां, तो ज्ञान सौ-गत पण नहीं,
ने सर्वगत छे ज्ञान तो क्यम ज्ञानस्थित अर्थो नहीं ? ३१.
- प्रभुकेवळी न ग्रहे, न छोडे, पररूपे नव परिणमे;
देखे अने जाणे निःशेषे सर्वतः ते सर्वने. ३२.
- श्रुतज्ञानथी जाणे खरे ज्ञायकस्वभावी आत्मने,
ऋषिओ प्रकाशक लोकना श्रुतकेवळी तेने कहे. ३३.
- पुद्गलस्वरूप वचनोथी जिन-उपदिष्ट जे ते सूत्र छे,
छे ज्ञप्ति तेनी ज्ञान, तेने सूत्रनी ज्ञप्ति कहे. ३४.
- जे जाणतो ते ज्ञान, नहि जीव ज्ञानथी ज्ञायक बने;
पोते प्रणमतो ज्ञानरूप, ने ज्ञानस्थित सौ अर्थ छे. ३५.

- छे ज्ञान तेथी जीव, ज्ञेय त्रिधा कहेलुं द्रव्य छे;
 ओ द्रव्य पर ने आतमा, परिणामसंयुत जेह छे. ३६.
- ते द्रव्यना सदभूत-असदभूत पर्ययो सौ वर्तता,
 तत्काळना पर्याय जेम, विशेषपूर्वक ज्ञानमां. ३७.
- जे पर्ययो अणजात छे, वळी जन्मीने प्रविनष्ट जे,
 ते सौ असदभूत पर्ययो पण ज्ञानमां प्रत्यक्ष छे. ३८.
- ज्ञाने अजात-विनष्ट पर्यायो तणी प्रत्यक्षता
 नव होय जो, तो ज्ञानने ओ 'दिव्य' कोण कहे भला ? ३९.
- ईहादिपूर्वक जाणता जे अक्षपतित पदार्थने,
 तेने परोक्ष पदार्थ जाणवुं शक्य ना—जिनजी कहे. ४०.
- जे जाणतुं अप्रदेशने, सप्रदेश, मूर्त, अमूर्तने,
 पर्याय नष्ट-अजातने, भाख्युं अतीन्द्रिय ज्ञान ते. ४१.
- जो ज्ञेय अर्थे परिणमे ज्ञाता, न क्षायिक ज्ञान छे;
 ते कर्मने ज अनुभवे छे ओम जिनदेवो कहे. ४२.
- भाख्यां जिने कर्मो उदयगत नियमथी संसारीने,
 ते कर्म होतां मोही-रागी-द्वेषी बंध अनुभवे. ४३.
- धर्मोपदेश, विहार, आसन, स्थान श्री अर्हतने
 वर्ते सहज ते काळमां, मायाचरण ज्यम नारीने. ४४.
- छे पुण्यफळ अर्हत, ने अर्हतकिरिया उदयिकी;
 मोहादिथी विरहित तेथी ते क्रिया क्षायिक गणी. ४५.

- आत्मा स्वयं निज भावथी जो शुभ-अशुभ बने नहीं,
तो सर्व जीवनिकायने संसार पण वर्ते नहीं ! ४६.
- सौ वर्तमान-अवर्तमान, विचित्र, विषम पदार्थने
युगपद् सरवतः जाणतुं, ते ज्ञान क्षायिक जिन कहे. ४७.
- जाणे नहीं युगपद् त्रिकाळिक त्रिभुवनस्थ पदार्थने,
तेने सपर्यय अेक पण नहि द्रव्य जाणवुं शक्य छे. ४८.
- जो अेक द्रव्य अनंतपर्यय तेम द्रव्य अनंतने
युगपद् न जाणे जीव, तो ते केम जाणे सर्वने ? ४९.
- जो ज्ञान 'ज्ञानी'नुं ऊपजे क्रमशः अरथ अवलंबीने,
तो नित्य नहि, क्षायिक नहीं ने सर्वगत नहि ज्ञान अे. ५०.
- नित्ये विषम, विधविध, सकळ पदार्थगण सर्वत्रनो
जिनज्ञान जाणे युगपदे, महिमा अहो अे ज्ञाननो ! ५१.
- ते अर्थरूप न परिणमे जीव, नव ग्रहे, नव ऊपजे,
सौ अर्थने जाणे छतां, तेथी अबंधक जिन कहे. ५२.
- अर्थोनुं ज्ञान अमूर्त, मूर्त, अतीन्द्रि ने अैन्द्रिय छे,
छे सुख पण अेवुं ज, त्यां परधान जे ते ग्राह्य छे. ५३.
- देखे अमूर्तिक, मूर्तमांय अतीन्द्रिने, प्रच्छन्नने,
ते सर्वने—पर के स्वकीयने, ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे. ५४.
- पोते अमूर्तिक जीव मूर्तशरीरगत अे मूर्तथी
कदी योग्य मूर्त अवग्रही जाणे, कदीक जाणे नही. ५५.

રસ, ગંધ, સ્પર્શ વળી વરણ ને શબ્દ જે પૌદ્ગલિક તે છે ઇન્દ્રિવિષયો, તેમનેય ન ઇન્દ્રિયો યુગપદ ગ્રહે. ૫૬.

તે ઇન્દ્રિયો પરદ્રવ્ય, જીવસ્વભાવ ભાચી ન તેમને; તેનાથી જે ઉપલબ્ધ તે પ્રત્યક્ષ કઈ રીત જીવને ? ૫૭.

અર્થો તણું જ્ઞાન પરતઃ થાય તેહ પરીક્ષ છે; જીવમાત્રથી જ જણાય જો, તો જ્ઞાન તે પ્રત્યક્ષ છે. ૫૮.

સ્વયમેવ જાત, સમંત, અર્થ અનંતમાં વિસ્તૃત ને અવગ્રહ-ઈહાદિ રહિત, નિર્મલ જ્ઞાન સુખ એકાંત છે. ૫૯.

જે જ્ઞાન 'કેવલ' તે જ સુખ, પરિણામ પળ વળી તે જ છે; ભાચ્યો ન તેમાં ખેદ જેથી ઘાતિકર્મ વિનષ્ટ છે. ૬૦.

અર્થાન્તગત છે જ્ઞાન, લોકાલોકવિસ્તૃત દૃષ્ટિ છે; છે નષ્ટ સર્વ અનિષ્ટ ને જે ઇષ્ટ તે સૌ પ્રાપ્ત છે. ૬૧.

સુણી 'ઘાતિકર્મવિહીનનું સુખ સૌ સુખે ઉત્કૃષ્ટ છે', શ્રદ્ધે ન તેહ અભવ્ય છે, ને ભવ્ય તે સંમત કરે. ૬૨.

સુર-અસુર-નરપતિ પીડિત વર્તે સહજ ઇન્દ્રિયો વડે, નવ સહી શકે તે દુઃખ તેથી રમ્ય વિષયોમાં રમે. ૬૩.

વિષયો વિષે રતિં જેમને, દુખ છે સ્વભાવિક તેમને; જો તે ન હોય સ્વભાવ તો વ્યાપાર નહિ વિષયો વિષે. ૬૪.

ઇન્દ્રિયસમાશ્રિત ઇષ્ટ વિષયો પામીને, નિજ ભાવથી જીવ પ્રણમતો સ્વયમેવ સુખરૂપ થાય, દેહ થતો નથી. ૬૫.

- अेकांतथी स्वर्गेय देह करे नहि सुख देहीने,
पण विषयवश स्वयमेव आत्मा सुख वा दुख थाय छे. ६६.
- जो दृष्टि प्राणीनी तिमिरहर, तो कार्य छे नहि दीपथी;
ज्यां जीव स्वयं सुख परिणमे, विषयो करे छे शुं तहीं ? ६७.
- ज्यम आभमां स्वयमेव भास्कर उष्ण, देव, प्रकाश छे,
स्वयमेव लोके सिद्ध पण त्यम ज्ञान, सुख ने देव छे. ६८.
- गुरु-देव-यतिपूजा विषे, वळी दान ने सुशीलो विषे,
जीव रक्त उपवासादिके, शुभ-उपयोगस्वरूप छे. ६९.
- शुभयुक्त आत्मा देव वा तिर्यच वा मानव बने;
ते पर्यये तावत्समय इन्द्रियसुख विधविध लहे. ७०.
- सुरनेय सौख्य स्वभावसिद्ध न—सिद्ध छे आगम विषे;
ते देहवेदनथी पीडित रमणीय विषयोमां रमे. ७१.
- तिर्यच-नारक-सुर-नरो जो देहगत दुख अनुभवे,
तो जीवनो उपयोग अे शुभ ने अशुभ कई रीत छे ? ७२.
- चक्री अने देवेन्द्र शुभ-उपयोगमूलक भोगथी
पुष्टि करे देहादिनी, सुखी सम दीसे अभिरत रही. ७३.
- परिणामजन्य अनेकविध जो पुण्यनुं अस्तित्व छे,
तो पुण्य अे देवान्त जीवने विषयतृष्णोद्भव करे. ७४.
- ते उदिततृष्ण जीवो, दुखित तृष्णाथी, विषयिक सुखने
इच्छे अने आमरण दुखसंतप्त तेने भोगवे. ७५.

- परयुक्त, बाधासहित, खंडित, बंधकारण, विषम छे;
जे इन्द्रियोथी लब्ध ते सुख अे रीते दुःख ज खरे. ७६.
- नहि मानतो—अे रीत पुण्ये पापमां न विशेष छे,
ते मोहथी आच्छन्न धोर अपार संसारे भमे. ७७.
- विदितार्थ अे रीत, रागद्वेष लहे न जे द्रव्यो विषे,
शुद्धोपयोगी जीव ते क्षय देहगत दुखनो करे. ७८.
- जीव छोडी पापारंभने शुभ चरितमां उद्यत भले,
जो नव तजे मोहादिने तो नव लहे शुद्धात्मने. ७९.
- जे जाणतो अर्हंतने गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.
- जीव मोहने करी दूर, आत्मस्वरूप सम्यक् पामीने,
जो रागद्वेष परिहरे तो पामतो शुद्धात्मने. ८१.
- अर्हंत सौ कर्मो तणो करी नाश अे ज विधि वडे,
उपदेश पण अेम ज करी, निर्वृत थया; नमु तेमने. ८२.
- द्रव्यादिके मूढ भाव वर्ते जीवने, ते मोह छे;
ते मोहथी आच्छन्न रागी-द्वेषी थई क्षोभित बने. ८३.
- रे ! मोहरूप वा रागरूप वा द्वेषपरिणत जीवने
विधविध थाये बंध, तेथी सर्व ते क्षययोग्य छे. ८४.
- अर्थो तणुं अयथाग्रहण, करुणा मनुज-तिर्यचमां,
विषयो तणो वळी संग,—लिंगो जाणवां आ मोहनां. ८५.

- शास्त्रो वडे प्रत्यक्षआदिथी जाणतो जे अर्थने,
तसु मोह पामे नाश निश्चय; शास्त्र समध्ययनीय छे. ८६.
- द्रव्यो, गुणो ने पर्ययो सौ 'अर्थ' संज्ञाथी कह्यां;
गुण-पर्ययोनो आत्मा छे द्रव्य जिन-उपदेशमां. ८७.
- जे पामी जिन-उपदेश हणतो राग-द्वेष-विमोहने,
ते जीव पामे अल्प काळे सर्व दुःखविमोक्षने. ८८.
- जे ज्ञानरूप निज आत्मने, परने वळी निश्चय वडे
द्रव्यत्वथी संबद्ध जाणे, मोहनो क्षय ते करे. ८९.
- तेथी यदि जीव इच्छतो निर्मोहता निज आत्मने,
जिनमार्गथी द्रव्यो महीं जाणो स्व-परने गुण वडे. ९०.
- श्रामण्यमां सत्तामयी सविशेष आ द्रव्यो तणी
श्रद्धा नहीं, ते श्रमण ना; तेमांथी धर्मोद्भव नहीं. ९१.
- आगम विषे कौशल्य छे ने मोहदृष्टि विनष्ट छे,
वीतराग-चरितारूढ छे, ते मुनि-महात्मा 'धर्म' छे. ९२.



૨. જ્ઞેયતત્ત્વ-પ્રજ્ઞાપન

છે અર્થ દ્રવ્યસ્વરૂપ, ગુણ-આત્મક કહ્યાં છે દ્રવ્યને,
વળી દ્રવ્ય-ગુણથી પર્યયો; પર્યાયમૂઢ પરસમય છે. ૯૩.

પર્યાયમાં રત્ત જીવ જે તે 'પરસમય' નિર્દિષ્ટ છે;
આત્મસ્વભાવે સ્થિત જે તે 'સ્વકસમય' જ્ઞાતવ્ય છે. ૯૪.

છોડ્યા વિના જ સ્વભાવને ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવયુક્ત છે,
વળી ગુણ ને પર્યય સહિત જે, 'દ્રવ્ય' ભાખ્યું તેહને. ૯૫.

ઉત્પાદ-ધ્રૌવ્ય-વિનાશથી, ગુણ ને વિવિધ પર્યાયથી
અસ્તિત્વ દ્રવ્યનું સર્વદા જે, તેહ દ્રવ્યસ્વભાવ છે. ૯૬.

વિધવિધલક્ષણીનું સરવ-ગત 'સત્ત્વ' લક્ષણ એક છે,
—એ ધર્મને ઉપદેશતા જિનવરવૃષભ નિર્દિષ્ટ છે. ૯૭.

દ્રવ્યો સ્વભાવે સિદ્ધ ને 'સત્'—તત્ત્વર્તઃ શ્રી જિનો કહે;
એ સિદ્ધ છે આગમ થકી, માને ન તે પરસમય છે. ૯૮.

દ્રવ્યો સ્વભાવ વિષે અવસ્થિત, તેથી 'સત્' સૌ દ્રવ્ય છે;
ઉત્પાદ-ધ્રૌવ્ય-વિનાશયુત પરિણામ દ્રવ્યસ્વભાવ છે. ૯૯.

ઉત્પાદ ભંગ વિના નહીં, સંહાર સર્ગ વિના નહીં;
ઉત્પાદ તેમ જ ભંગ, ધ્રૌવ્ય-પદાર્થ વિણ વર્તે નહીં. ૧૦૦.

ઉત્પાદ તેમ જ ધ્રૌવ્ય ને સંહાર વર્તે પર્યયે,
ને પર્યયો દ્રવ્યે નિયમથી, સર્વ તેથી દ્રવ્ય છે. ૧૦૧.

उत्पाद-ध्रौव्य-विनाशसंज्ञित अर्थ सह समवेत छे
 अक ज समयमां द्रव्य निश्चय, तेथी अे त्रिक द्रव्य छे. १०२.

ऊपजे दरवनो अन्य पर्याय, अन्य को विणसे वळी,
 पण द्रव्य तो नथी नष्ट के उत्पन्न द्रव्य नथी तहीं. १०३.

अविशिष्टसत्त्व स्वयं दरव गुणथी गुणांतर परिणमे,
 तेथी वळी द्रव्य ज कह्या छे सर्वगुणपर्यायने. १०४.

जो द्रव्य होय न सत्, ठरे ज असत्, बने क्यम द्रव्य अे ?
 वा भिन्न ठरतुं सत्त्वथी ! तेथी स्वयं ते सत्त्व छे. १०५.

जिन वीरनो उपदेश अेम—पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता,
 अन्यत्व जाण अतत्पणुं; नहि ते-पणे ते अेक क्यां ? १०६.

'सत् द्रव्य', 'सत् पर्याय', 'सत्गुण'—सत्त्वनो विस्तार छे;
 नथी ते-पणे अन्योन्य तेह अतत्पणुं ज्ञातव्य छे. १०७.

स्वरूपे नथी जे द्रव्य ते गुण, गुण ते नहि द्रव्य छे,
 —आने अतत्पणुं जाणवुं, न अभावने; भाख्युं जिने. १०८.

परिणाम द्रव्यस्वभाव जे, ते गुण 'सत्'-अविशिष्ट छे;
 'द्रव्यो स्वभावे स्थित सत् छे'—अे ज आ उपदेश छे. १०९.

पर्याय के गुण अेवुं कोई न द्रव्य विण विश्चे दीसे;
 द्रव्यत्व छे वळी भाव; तेथी द्रव्य पोते सत्त्व छे. ११०.

आवुं दरव द्रव्यार्थ-पर्यायार्थथी निजभावमां
 सद्भाव-अणसद्भावयुत उत्पादने पामे सदा. १११.

- जीव परिणमे तेथी नरादिक अे थशे; पण ते-रूपे
शुं छोडतो द्रव्यत्वने ? नहि छोडतो क्यम अन्य अे ? ११२.
- मानव नथी सुर, सुर पण नहि मनुज के नहि सिद्ध छे;
अे रीत नहि होतो थको क्यम ते अनन्यपणुं धरे ? ११३.
- द्रव्यार्थिके बधुं द्रव्य छे; ने ते ज पर्यायार्थिके
छे अन्य, जेथी ते समय तद्रूप होई अनन्य छे. ११४.
- अस्ति, तथा छे नास्ति, तेम ज द्रव्य अणवक्तव्य छे,
वळी उभय को पर्यायथी, वा अन्यरूप कथाय छे. ११५.
- नथी 'आ ज' अेवो कोई, ज्यां किरिया स्वभाव-निपन्न छे;
किरिया नथी फळहीन, जो निष्फळ धरम उत्कृष्ट छे. ११६.
- नामाख्य कर्म स्वभावथी निज जीवद्रव्य-स्वभावने
अभिभूत करी तिर्यच, देव, मनुष्य वा नारक करे. ११७.
- तिर्यच-सुर-नर-नारकी जीव नामकर्म-निपन्न छे;
निज कर्मरूप परिणमनथी ज स्वभावलाब्धि न तेमने. ११८.
- नहि कोई ऊपजे विणसे क्षणभंगसंभवमय जगे,
कारण जनम ते नाश छे; वळी जन्म-नाश विभिन्न छे. ११९.
- तेथी स्वभावे स्थिर अेवुं न कोई छे संसारमां;
संसार तो संसरण करता द्रव्य केरी छे क्रिया. १२०.
- कर्म मलिन जीव कर्मसंयुत पामतो परिणामने,
तेथी करम बंधाय छे; परिणाम तेथी कर्म छे. १२१.

- પરિણામ પોતે જીવ છે, ને છે ક્રિયા એ જીવમયી;
કિરિયા ગણી છે કર્મ; તેથી કર્મનો કર્તા નથી. ૧૨૨.
- જીવ ચેતનારૂપ પરિણમે; વઢી ચેતના ત્રિવિધા ગણી;
તે જ્ઞાનવિષયક, કર્મવિષયક, કર્મફલવિષયક કહી. ૧૨૩.
- છે 'જ્ઞાન' અર્થવિકલ્પ, ને જીવથી કરાતું 'કર્મ' છે,
—તે છે અનેક પ્રકારનું, 'ફલ' સૌખ્ય અથવા દુઃખ છે. ૧૨૪.
- પરિણામ-આત્મક જીવ છે, પરિણામ જ્ઞાનાદિક બને;
તેથી કરમફલ, કર્મ તેમ જ જ્ઞાન આત્મા જાણજે. ૧૨૫.
- 'કર્તા, કરમ, ફલ, કરણ જીવ છે' એમ જો નિશ્ચય કરી
મુનિ અન્યરૂપ નવ પરિણમે, પ્રાપ્તિ કરે શુદ્ધાત્મની. ૧૨૬.
- છે દ્રવ્ય જીવ, અજીવ; ચિત-ઉપયોગમય તે જીવ છે;
પુદ્ગલપ્રમુખ જે છે અચેતન દ્રવ્ય, તેહ અજીવ છે. ૧૨૭.
- આકાશમાં જે ભાગ ધર્મ-અધર્મ-કાલ સહિત છે,
જીવ-પુદ્ગલોથી યુક્ત છે, તે સર્વકાલે લોક છે. ૧૨૮.
- ઉત્પાદ, વ્યય ને ધ્રુવતા જીવપુદ્ગલાત્મક લોકને
પરિણામ દ્વારા, ભેદ વા સંઘાત દ્વારા થાય છે. ૧૨૯.
- જે લિંગથી દ્રવ્યો મહીં 'જીવ' 'અજીવ' એમ જણાય છે,
તે જાણ મૂર્ત-અમૂર્ત ગુણ, અતત્પણાથી વિશિષ્ટ જે. ૧૩૦.
- ગુણ મૂર્ત ઇન્દ્રિયગ્રાહ્ય તે પુદ્ગલમયી બહુવિધ છે;
દ્રવ્યો અમૂર્તિક જેહ તેના ગુણ અમૂર્તિક જાણજે. ૧૩૧.

- छे वर्ण तेम ज गंध वळी रस-स्पर्श पुद्गलद्रव्यने,
—अतिसूक्ष्मथी पृथ्वी सुधी; वळी शब्द पुद्गल, विविध जे. १३२.
- अवगाह गुण आकाशनो, गतिहेतुता छे धर्मनो,
वळी स्थानकारणतारूपी गुण जाण द्रव्य अधर्मनो. १३३.
- छे काळनो गुण वर्तना, उपयोग भाख्यो जीवमां,
अ रीत मूर्तिविहीनना गुण जाणवा संक्षेपमां. १३४.
- जीवद्रव्य, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म वळी आकाशने
छे स्वप्रदेश अनेक, नहि वर्ते प्रदेशो काळने. १३५.
- लोके अलोके आभ, लोक अधर्म-धर्मथी व्याप्त छे,
छे शेष-आश्रित काळ, ने जीव-पुद्गलो ते शेष छे. १३६.
- जे रीत आभ-प्रदेश, ते रीत शेषद्रव्य-प्रदेश छे;
अप्रदेश परमाणु वडे उद्भव प्रदेश तणो बने. १३७.
- छे काळ तो अप्रदेश; अेकप्रदेश परमाणु यदा
आकाशद्रव्य तणो प्रदेश अतिक्रमे, वर्ते तदा. १३८.
- ते देशना अतिक्रमण सम छे 'समय', तत्पूर्वापरि
जे अर्थ छे ते काळ छे, उत्पन्नध्वंसी 'समय' छे. १३९.
- आकाश जे अणुव्याप्य, 'आभप्रदेश' संज्ञा तेहने;
ते एक सौ परमाणुने अवकाशदानसमर्थ छे. १४०.
- वर्ते प्रदेशो द्रव्यने, जे अेक अथवा बे अने
बहु वा असंख्य, अनंत छे; वळी होय समयो काळने. १४१.

- एक ज समयमां ध्वंस ने उत्पादनो सद्भाव छे
 जो काळने, तो काळ तेह स्वभाव-समवस्थित छे. १४२.
- प्रत्येक समये जन्म-ध्रौव्य-विनाश अर्थो काळने
 वर्ते सरवदा; आ ज बस काळाणुनो सद्भाव छे. १४३.
- जे अर्थने न बहु प्रदेश, न एक वा परमार्थथी,
 ते अर्थ जाणो शून्य केवळ—अन्य जे अस्तित्वथी. १४४.
- सप्रदेश अर्थोथी समाप्त समग्र लोक सुनित्य छे;
 तसु जाणनारो जीव, प्राणचतुष्कथी संयुक्त जे. १४५.
- इंद्रियप्राण, तथा वळी बळप्राण, आयुप्राण ने
 वळी प्राण श्वासोच्छ्वास—अे सौ, जीव केरा प्राण छे. १४६.
- जे चार प्राणे जीवतो पूर्वे, जीवे छे, जीवशे,
 ते जीव छे; पण प्राण तो पुद्गलदरवनिष्पन्न छे. १४७.
- मोहादिकर्मनिबंधथी संबंध पामी प्राणनो,
 जीव कर्मफळ-उपभोग करतां, बंध पामे कर्मनो. १४८.
- जीव मोह-द्वेष वडे करे बाधा जीवोना प्राणने,
 तो बंध ज्ञानावरण-आदिक कर्मनो ते थाय छे. १४९.
- कर्मे मलिन जीव त्यां लगी प्राणो धरे छे फरी फरी,
 ममता शरीरप्रधान विषये ज्यां लगी छोडे नहीं. १५०.
- करी इंद्रियादिक-विजय, ध्यावे आत्मने—उपयोगने,
 ते कर्मथी रंजित नहीं; क्यम प्राण तेने अनुसरे ? १५१.

- अस्तित्वनिश्चित अर्थनो को अन्य अर्थे ऊपजतो
जे अर्थ ते पर्याय छे, ज्यां भेद संस्थानादिनो. १५२.
- तिर्यच, नारक, देव, नर—अे नामकर्मोदय वडे
छे जीवना पर्याय, जेह विशिष्ट संस्थानादिके. १५३.
- अस्तित्वथी निष्पन्न द्रव्यस्वभावने त्रिविकल्पने
जे जाणतो, ते आतमा नहि मोह परद्रव्ये लहे. १५४.
- छे आतमा उपयोगरूप, उपयोग दर्शन-ज्ञान छे;
उपयोग अे आत्मा तणो शुभ वा अशुभरूप होय छे. १५५.
- उपयोग जो शुभ होय, संचय थाय पुण्य तणो तहीं,
ने पापसंचय अशुभथी; ज्यां उभय नहि, संचय नहीं. १५६.
- जाणे जिनोने जेह, श्रद्धे सिद्धने, अणंगारने,
जे सानुकंप जीवो प्रति, उपयोग छे शुभ तेहने. १५७.
- कुविचार-संगति-श्रवणयुत, विषये कषाये मग्न जे,
जे उग्र ने उन्मार्ग पर, उपयोग तेह अशुभ छे. १५८.
- मध्यस्थ परद्रव्ये थतो, अशुभोपयोग रहित ने
शुभमां अयुक्त, हुं ध्याउं छुं निज आत्मने ज्ञानात्मने. १५९.
- हुं देह नहि, वाणी न, मन नहि, तेमनुं कारण नहीं,
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. १६०.
- मन, वाणी तेम ज देह पुदगलद्रव्यरूप निर्दिष्ट छे;
ने तेह पुदगलद्रव्य बहु परमाणुओनो पिंड छे. १६१.

हुं पौद्गलिक नथी, पुद्गलो में पिंडरूप कर्या नथी;
तेथी नथी हुं देह वा ते देहनो कर्ता नथी. १६२.

परमाणु जे अप्रदेश, तेम प्रदेशमात्र, अशब्द छे,
ते स्निग्ध-रूक्ष बनी प्रदेशद्वयादिवत्त्व अनुभवे. १६३.

अंकांशथी आरंभी ज्यां अविभाग अंश अनंत छे,
स्निग्धत्व वा रूक्षत्व अे परिणामथी परमाणुने. १६४.

हो स्निग्ध अथवा रूक्ष अणु-परिणाम, सम वा विषम हो,
बंधाय जो गुणद्वय अधिक; नहीं बंध होय जघन्यनो. १६५.

चतुरंश को स्निग्धाणु सह द्वय-अंशमय स्निग्धाणुनो;
पंचांशी अणु सह बंध थाय त्रयांशमय रूक्षाणुनो. १६६.

स्कंधो प्रदेशद्वयादियुत, स्थूल-सूक्ष्म ने साकार जे,
ते पृथ्वी-वायु-तेज-जळ परिणामथी निज थाय छे. १६७.

अवगाढ गाढ भरेल छे सर्वत्र पुद्गलकायथी
आ लोक बादर-सूक्ष्मथी, कर्मत्वयोग्य-अयोग्यथी. १६८.

स्कंधो करमने योग्य पामी जीवना परिणामने
कर्मत्वने पामे; नहीं जीव परिणामावे तेमने. १६९.

कर्मत्वपरिणत पुद्गलोना स्कंध ते ते फरी फरी
शरीरो बने छे जीवने, संक्रांति पामी देहनी. १७०.

जे देह औदारिक, ने वैक्रिय-तैजस देह छे,
कार्मण-अहारक देह जे, ते सर्व पुद्गलरूप छे. १७१.

छे चेतनागुण, गंध-रूप-रस-शब्द-व्यक्ति न जीवने,
वळी लिंगग्रहण नथी अने संस्थान भाख्युं न तेहने. १७२.

अन्योन्य स्पर्शथी बंध थाय रूपादिगुणयुत मूर्तने;
पण जीव मूर्तिरहित बांधे केम पुद्गलकर्मने ? १७३.

जे रीत दर्शन-ज्ञान थाय रूपादिनुं—गुण-द्रव्यनुं,
ते रीत बंधन जाण मूर्तिरहितने पण मूर्तनुं. १७४.

विधविध विषयो पामीने उपयोग-आत्मक जीव जे
प्रद्वेष-राग-विमोहभावे परिणमे, ते बंध छे. १७५.

जे भावथी देखे अने जाणे विषयगत अर्थने,
तेनाथी छे उपरक्तता; वळी कर्मबंधन ते वडे. १७६.

रागादि सह आत्मा तणो, ने स्पर्श सह पुद्गल तणो,
अन्योन्य जे अवगाह तेने बंध उभयात्मक कह्यो. १७७.

सप्रदेश छे ते जीव, जीवप्रदेशमां आवे अने
पुद्गलसमूह रहे यथोचित, जाय छे, बंधाय छे. १७८.

जीव रक्त बांधे कर्म, राग रहित जीव मुकाय छे;
—आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चय जाणजे. १७९.

परिणामथी छे बंध, राग-विमोह-द्वेषथी युक्त जे;
छे मोह-द्वेष अशुभ, राग अशुभ वा शुभ होय छे. १८०.

पर मांही शुभ परिणाम पुण्य, अशुभ परमां पाप छे;
निजद्रव्यगत परिणाम समये दुःखक्षयनो हेतु छे. १८१.

स्थावर अने त्रस पृथ्वीआदिक जीवकाय कहेल जे, ते जीवथी छे अन्य तेम ज जीव तेथी अन्य छे. १८२.

परने स्वने नहि जाणतो अे रीत पामी स्वभावने, ते 'आ हुं, आ मुज' अेम अध्यवसाय मोह थकी करे. १८३.

निज भाव करतो जीव छे कर्ता खरे निज भावनो; पण ते नथी कर्ता सकल पुद्गलदरवमय भावनो. १८४.

जीव सर्व काळे पुद्गलोनी मध्यमा वर्ते भले, पण नव ग्रहे, न तजे, करे नहि जीव पुद्गलकर्मि. १८५.

ते हाल द्रव्यजनित निज परिणामनो कर्ता बने, तेथी ग्रहाय अने कदापि मुकाय छे कर्मो वडे. १८६.

जीव राग-द्वेषथी युक्त ज्यारे परिणमे शुभ-अशुभमां, ज्ञानावरणइत्यादिभावे कर्मधूलि प्रवेश त्यां. १८७.

सप्रदेश जीव समये कषायित मोहरागादि वडे, संबंध पामी कर्मरजनो, बंधरूप कथाय छे. १८८.

—आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चय भाखियो अर्हतदेवे योगीने; व्यवहार अन्य रीते कह्यो. १८९.

'हुं आ अने आ मारुं' अे ममता न देह-धने तजे, ते छोडी जीव श्रामण्यने उन्मार्गनो आश्रय करे. १९०.

हुं पर तणो नहि, पर न मारां, ज्ञान केवळ अेक हुं —जे अेम ध्यावे, ध्यानकाळे तेह शुद्धात्मा बने. १९१.



- अे रीत दर्शन-ज्ञान छे, इंद्रिय-अतीत महार्थ छे,
मानुं हुं—आलंबन रहित, जीव शुद्ध, निश्चल ध्रुव छे. १६२.
- लक्ष्मी, शरीर, सुखदुःख अथवा शत्रुमित्र जनो अरे !
जीवने नथी कई ध्रुव, ध्रुव उपयोग-आत्मक जीव छे. १६३.
- आ जाणी, शुद्धात्मा बनी, ध्यावे परम निज आत्मने,
साकार अण-आकार हो, ते मोहग्रंथि क्षय करे. १६४.
- हणी मोहग्रंथि, क्षय करी रागादि, समसुखदुःख जे
जीव परिणमे श्रामण्यमां, ते सौख्य अक्षयने लहे. १६५.
- जे मोहमळ करी नष्ट, विषयविरक्त थई, मन रोकने,
आत्मस्वभावे स्थित छे, ते आत्मने ध्यानार छे. १६६.
- शा अर्थने ध्यावे श्रमण, जे नष्टघातिकर्म छे,
प्रत्यक्षसर्वपदार्थ ने ज्ञेयान्तप्राप्त, निःशंक छे ? १६७.
- बाधा रहित, सकलात्ममां संपूर्णसुखज्ञानाढ्य जे,
इन्द्रिय-अतीत अनिन्द्रि ते ध्यावे परम आनंदने. १६८.
- श्रमणो, जिनो, तीर्थकरो आ रीत सेवी मार्गनि
सिद्धि वर्या; नमुं तेमने, निर्वाणना ते मार्गनि. १६९.
- अे रीत तेथी आत्मने ज्ञायकस्वभावी जाणीने,
निर्ममपणे रही स्थित आ परिवर्जुं छुं हुं ममत्वने. २००.



३. चरणानुयोगसूचक चूलिका

- अे रीत प्रणमी सिद्ध, जिनवरवृषभ, मुनिने फरी फरी,
श्रामण्य अंगीकृत करो, अभिलाष जो दुखमुक्तिनी. २०१.
- बंधुजनोनी विदाय लइ, स्त्री-पुत्र-वडीलोथी छूटी,
दृग-ज्ञान-तप-चारित्र-वीर्याचार अंगीकृत करी. २०२.
- ‘मुजने ग्रहो’ कही, प्रणत थई, अनुगृहीत थाय गणी वडे,
—वयरूपकुलविशिष्ट, योगी, गुणाढ्य ने मुनि-इष्ट जे. २०३.
- परनो न हुं, पर छे न मुज, मारुं नथी कंई पण जगे,
—अे रीत निश्चित ने जितेन्द्रिय साहजिकरूपधर बने. २०४.
- जन्म्या प्रमाणे रूप, लुंचन केशनुं, शुद्धत्व ने
हिंसादिथी शून्यत्व, देह-असंस्करण—अे लिंग छे. २०५.
- आरंभमूर्छाशून्यता, उपयोगयोगविशुद्धता,
निरपेक्षता परथी,—जिनोदित मोक्षकारण लिंग आ. २०६.
- ग्रही परमगुरु-दीधेल लिंग, नमस्करण करी तेमने,
व्रत ने क्रिया सुणी, थई उपस्थित, थाय छे मुनिराज अे. २०७.
- व्रत, समिति, लुंचन, आवश्यक, अणचेल, इन्द्रियरोधनं,
नहि स्नान-दातण, अेक भोजन, भूशयन, स्थितिभोजनं, २०८.
- आ मूळगुण श्रमणो तणा जिनदेवथी प्रज्ञप्त छे,
तेमां प्रमत्त थतां श्रमण छेदोपस्थापक थाय छे. २०९.

जे लिंगग्रहणे साधुपद देनार ते गुरु जाणवा;
छेदद्वये स्थापन करे ते शेष मुनि निर्यापका. २१०.

जो छेद थाय प्रयत्न सह कृत कायनी चेष्टा विषे,
आलोचनापूर्वक क्रिया कर्तव्य छे ते साधुने. २११.

छेदोपयुक्त मुनि, श्रमण व्यवहारविज्ञ कने जई,
निज दोष आलोचन करी, श्रमणोपदिष्ट करे विधि. २१२.

प्रतिबंध परित्यागी सदा अधिवास अगर विवासमां,
मुनिराज विहरो सर्वदा थई छेदहीन श्रामण्यमां. २१३.

जे श्रमण ज्ञान-दृगादिके प्रतिबद्ध विचरे सर्वदा,
ने प्रयत्न मूळगुणो विषे, श्रामण्य छे परिपूर्ण त्यां. २१४.

मुनि क्षर्पण मांही, निवासस्थान, विहार वा भोजन महीं,
उपधि-श्रमण-विकथा महीं प्रतिबंधने इच्छे नही. २१५.

आसन-शयन-गमनादिके चर्या प्रयत्नविहीन जे,
ते जाणवी हिंसा सदा संतानवाहिनी श्रमणने. २१६.

जीवो - मरो जीव, यत्नहीन आचार त्यां हिंसा नक्की;
समिति-प्रयत्नसहितने नहि बंध हिंसामात्रथी. २१७.

मुनि यत्नहीन आचारवंत छे कायनो हिंसक कह्यो;
जलकमलवत् निर्लेप भाख्यो, नित्य यत्नसहित जो. २१८.

दैहिक क्रिया थकी जीव भरता बंध थाय—न थाय छे,
परिग्रह थकी ध्रुव बंध, तेथी समस्त छोड्यो योगीजे. २१९.

निरपेक्ष त्याग न होय तो नहि भावशुद्धि भिक्षुने,
ने भावमां अविशुद्धने क्षय कर्मनो कई रीत बने ? २२०.

आरंभ, अणसंख्यम अने मूर्छाज त्यां—अे क्यम बने ?
परद्रव्यरत जे होय ते कई रीत साधे आत्मने ? २२१.

ग्रहणे विसर्गे सेवतां नहि छेद जेथी थाय छे,
ते उपधि सह वर्तो भले मुनि काळक्षेत्र विजाणीने. २२२.

उपधि अनिंदितने, असंयत जन थकी अणप्रार्थ्यने,
मूर्छादिजननेरहितने जे ग्रहो श्रमण, थोडो भले. २२३.

क्यम अन्य परिग्रह होय ज्यां कही देहने परिग्रह अहो !
मोक्षेच्छुने देहेय निष्प्रतिकर्म उपदेशे जिनो ? २२४.

जन्या प्रमाणे रूप, भाख्युं उपकरण जिनमार्गमां,
गुरुवचन ने सूत्राध्ययन, वळी विनय पण उपकरणमां. २२५.

आ लोकमां निरपेक्ष ने परलोक-अणप्रतिबद्ध छे
साधु कषायरहित, तेथी युक्त आर-विहारी छे. २२६.

आत्मा अनेषक ते यो तप, तत्सिद्धिमां उद्यत रही
वण-अेषणा भिक्षा वळी, तेथी अनाहारी मुनि. २२७.

केवलशरीर मुनि त्यांय 'मारुं न' जाणी वण-प्रतिकर्म छे,
निज शक्तिना गोपन विना तप साथ तन योजेल छे. २२८.

आहार ते अेक ज, ऊणोदर ने यथा-उपलब्ध छे,
भिक्षा वडे, दिवसे, रसेच्छाहीन, वण-मधुमांस छे. २२९.

- वृद्धत्व, बाळपणा विषे, ग्लानत्व, श्रांत दशा विषे,
चर्या चरो निजयोग्य, जे रीत मूळछेद न थाय छे. २३०.
- जो देश-काळ तथा क्षमा-श्रम-उपाधिने मुनि जाणीने
वर्ते अहारविहारमां, तो अल्पलेपी श्रमण ते. २३१.
- श्रामण्य, ज्यां अैकाग्र्य, ने अैकाग्र्य वस्तुनिश्चये,
निश्चय बने आगम वडे, आगमप्रवर्तन मुख्य छे. २३२.
- आगमरहित जे श्रमण ते जाणे न परने, आत्मने;
भिक्षु पदार्थ-अजाण ते क्षय कर्मनो कइ रीत करे ? २३३.
- मुनिराज आगमचक्षु ने सौ भूत इन्द्रियचक्षु छे,
छे देव अवधिचक्षु ने सर्वत्रचक्षु सिद्ध छे. २३४.
- सौ चित्र गुणपर्याययुक्त पदार्थ आगमसिद्ध छे;
ते सर्वने जाणे श्रमण अे देखीने आगम वडे. २३५.
- दृष्टि न आगमपूर्विका ते जीवने संयम नहीं
—अे सूत्र केरुं छे वचन; मुनि केम होय असंयमी ? २३६.
- सिद्धि नहीं आगम थकी, श्रद्धा न जो अर्थो तणी;
निर्वाण नहि अर्थो तणी श्रद्धाथी, जो संयम नहीं. २३७.
- अज्ञानी जे कर्मो खपावे लक्ष कोटि भवो वडे,
ते कर्म ज्ञानी त्रिगुप्त बस उच्छ्वासमात्रथी क्षय करे. २३८.
- अणुमात्र पण मूर्छा तणो सद्भाव जो देहादिके,
तो सर्वागमधर भले पण नव लहे सिद्धत्वने. २३९.

- जे पंचसमित, त्रिगुप्त, इन्द्रिनिरोधी, विजयी कषायनो,
परिपूर्ण दर्शनज्ञानथी, ते श्रमणने संयत कह्यो. २४०.
- निंदा-प्रशंसा, दुःख-सुख, अरि-बंधुमां ज्यां साम्य छे,
वळी लोष्ट-कनके, जीवित-मरणे साम्य छे, ते श्रमण छे. २४१.
- दृग, ज्ञान ने चारित्र त्रणमां युगपदे आरूढ जे,
तेने कह्यो अैकाग्रगत, श्रामण्य त्यां परिपूर्ण छे. २४२.
- परद्रव्यने आश्रय श्रमण अज्ञानी पामे मोहने
वा रागने वा द्वेषने, तो विविध बांधे कर्मने. २४३.
- नहि मोह, ने नहि राग, द्वेष करे नहीं अर्थो विषे,
तो नियमथी मुनिराज अे विधविध कर्मो क्षय करे. २४४.
- शुद्धोपयोगी श्रमण छे, शुभयुक्त पण शास्त्रे कह्या;
शुद्धोपयोगी छे निगस्रव, शेष सास्रव जाणवा. २४५.
- वात्सल्य प्रवचनरत विषे ने भक्ति अर्हतादिके
—अे होय जो श्रामण्यमां, तो चरण ते शुभयुक्त छे. २४६.
- श्रमणो प्रति वंदन, नमन, अनुगमन, अभ्युत्थान ने
वळी श्रमनिवारण छे न निंदित रागयुत चर्या विषे. २४७.
- उपदेश दर्शनज्ञाननो, पोषण-ग्रहण शिष्यो. तणुं,
उपदेश जिनपूजा तणो—वर्तन तुं जाण सरागनुं. २४८.
- वण जीवकायविराधना उपकार जे नित्ये करे
चउविध साधुसंधने, ते श्रमण रागप्रधान छे. २४९.

- वैयावृते उद्यत श्रमण षट् कायने पीडा करे
तो श्रमण नहि, पण छे गृही; ते श्रावकोनो धर्म छे. २५०.
- छे अल्प लेप छतांय दर्शनज्ञानपरिणत जैनने
निरपेक्षतापूर्वक करो उपकार अनुकंपा वडे. २५१.
- आक्रांत देखी श्रमणने श्रम, रोग वा भूख, प्यासथी,
साधु करो सेवा स्वशक्तिप्रमाण अ मुनिराजनी. २५२.
- सेवानिमित्ते रोगी-बाळक-वृद्ध-गुरु श्रमणो तणी,
लौकिक जनो सह वात शुभ-उपयोगयुत निंदित नथी. २५३.
- आ शुभ चर्या श्रमणने, वळी मुख्य होय गृहस्थने;
तेना वडे ज गृहस्थ पामे मोक्षमुख उत्कृष्टने. २५४.
- फळ होय छे विपरीत वस्तुविशेषथी शुभ रागने,
निष्पत्ति विपरीत होय भूमिविशेषथी ज्यम बीजने. २५५.
- छद्मस्थ-अभिहित ध्यानदाने व्रतनियमपठनादिके
रत जीव मोक्ष लहे नहीं, बस भाव शातात्मक लहे. २५६.
- परमार्थथी अनभिज्ञ, विषयकषायअधिक जनो परे
उपकार-सेवा-दान सर्व कुदेवमनुजपणे फळे. २५७.
- 'विषयो कषायो पाप छे' जो अम निरूपण शास्त्रमां,
तो केम तत्प्रतिबद्ध पुरुषो होय रे निस्तारका ? २५८.
- ते पुरुष जाण सुमार्गशाळी, पाप-उपरम जेहने,
समभाव ज्यां सौ धार्मिके, गुणसमूहसेवन जेहने. २५९.

अशुभोपयोगरहित श्रमणो—शुद्ध वा शुभयुक्त जे, ते लोकने तारे; अने तद्भक्त पामे पुण्यने. २६०.

प्रकृत वस्तु देखी अभ्युत्थान आदि क्रिया थकी वर्तो श्रमण, पछी वर्तनीय गुणानुसार विशेषथी. २६१.

गुणथी अधिक श्रमणो प्रति सत्कार, अभ्युत्थान ने अंजलिकरण, पोषण, ग्रहण, सेवन अहीं उपदिष्ट छे. २६२.

मुनि सूत्र-अर्थप्रवीण संयमज्ञानतपसमृद्धने प्रणिपात, अभ्युत्थान, सेवा साधुअे कर्तव्य छे. २६३.

शास्त्रे कहुं—तपसूत्रसंयमयुक्त पण साधु नहीं, जिन-उक्त आत्मप्रधान सर्व पदार्थ जो श्रद्धे नहीं. २६४.

मुनि शासने स्थित देखीने जे द्वेषथी निंदा करे, अनुमत नहीं किरिया विषे, ते नाश चरण तणो करे. २६५.

जे हीनगुण होवा छतां 'हुं पण श्रमण छुं' मद करे, इच्छे विनय गुण-अधिक पास, अनंतसंसारी बने. २६६.

मुनि अधिकगुण हीनगुण प्रति वर्ते यदि विनयादिमां, तो भ्रष्ट थाय चरित्रथी उपयुक्त मिथ्या भावमां. २६७.

सूत्रार्थपदनिश्चय, कषायप्रशांति, तप-अधिकत्व छे, ते पण असंयत थाय, जो छोडे न लौकिक-संगने. २६८.

निर्ग्रंथरूप दीक्षा वडे संयमतपे संयुक्त जे, लौकिक कह्यो तेने य, जो छोडे न अैहिक कर्मने. २६९.

- तेथी श्रमणने होय जो दुखमुक्ति केरी भावना,
तो. नित्य वसवुं समान अगर विशेष गुणीना संगमां. २७०.
- समयस्थ हो पण सेवी भ्रम अयथा ग्रहे जे अर्थने,
अत्यंतफळसमृद्ध भावी काळमां जीव ते भमे. २७१.
- अयथाचरणहीन, सूत्र-अर्थसुनिश्चयी उपशांत जे,
ते पूर्ण साधु अफळ आ संसारमां चिर नहि रहे. २७२.
- जाणी यथार्थ पदार्थने, तजी संग अंतर्बाह्यने,
आसक्त नहि विषयो विषे जे, 'शुद्ध' भाख्या तेमने. २७३.
- रे ! शुद्धने श्रामण्य भाख्युं, ज्ञान-दर्शन शुद्धने,
छे शुद्धने निर्वाण, शुद्ध ज सिद्ध, प्रणमुं तेहने. २७४.
- साकार अण-आकार चर्यायुक्त आ उपदेशने
जे जाणतो, ते अल्प काळे सार प्रवचननो लहे. २७५.



ॐ

श्री

पंचास्तिकायसंग्रह

पद्यानुवाद

१. षड्द्रव्य-पंचास्तिकायवर्णन

(हसिगीत)

- शत-इन्द्रवंदित, त्रिजगहित-निर्मळ-मधुर वदनारने,
निःसीम गुण धरनारने, जितभव नमुं जिनराजने. १.
- आ समयने शिरनमनपूर्वक भाखुं छुं, सुणजो तमे;
जिनवदननिर्गत-अर्थमय, चउगतिहरण, शिवहेतु छे. २.
- समवाद वा समवाय पांच तणो समय—भाख्युं जिने;
ते लोक छे, आगळ अमाप अलोक आभस्वरूप छे. ३.
- जीवद्रव्य, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म ने आकाश अे
अस्तित्वनियत, अनन्यमय ने अणुमहान पदार्थ छे. ४.
- विधविध गुणो ने पर्ययो सह जे अनन्यपणुं धरे
ते अस्तिकायो जाणवा, त्रैलोक्यरचना जे वडे. ५.

તે અસ્તિકાય ત્રિકાલભાવે પરિણમે છે, નિત્ય છે;
એ પાંચ તેમ જ કાલ વર્તનલિંગ સર્વે દ્રવ્ય છે. ૬.

અન્યોન્ય થાય પ્રવેશ, એ અન્યોન્ય દે અવકાશને,
અન્યોન્ય મિલન, છતાં કદી છોડે ન આપસ્વભાવને. ૭.

સર્વાર્થપ્રાપ્ત, સવિશ્વરૂપ, અનંતપર્યાયવંત છે,
સત્તા જનમ-લય-ધ્રુવ્યમય છે, એક છે, સવિપ્રક્ષ છે. ૮.

તે તે વિવિધ સદ્ભાવપર્યાયને દ્રવે—વ્યાપે—લહે,
તેને કહે છે દ્રવ્ય, જે સત્તા થકી નહિ અન્ય છે. ૯.

છે સત્ત્વ લક્ષણ જેહનું, ઉત્પાદવ્યયધ્રુવયુક્ત જે,
ગુણપર્યાયાશ્રય જેહ, તેને દ્રવ્ય સર્વજ્ઞી કહે. ૧૦.

નહિ દ્રવ્યનો ઉત્પાદ અથવા નાશ નહિ, સદ્ભાવ છે;
તેના જ જે પર્યાય તે ઉત્પાદ-લય-ધ્રુવતા કરે. ૧૧.

પર્યાયવિરહિત દ્રવ્ય નહિ, નહિ દ્રવ્યહીન પર્યાય છે;
પર્યાય તેમ જ દ્રવ્ય કેરી અનન્યતા શ્રમણો કહે. ૧૨.

નહિ દ્રવ્ય વિણ ગુણ હોય, ગુણ વિણ દ્રવ્ય પણ નહિ હોય છે;
તેથી ગુણો ને દ્રવ્ય કેરી અભિન્નતા નિર્દિષ્ટ છે. ૧૩.

છે અસ્તિ, નાસ્તિ, ઉભય તેમ અવાચ્ય આદિક ભંગ જે,
આદેશવશ તે સાત ભંગો યુક્ત સર્વે દ્રવ્ય છે. ૧૪.

નહિ 'ભાવ' કેરો નાશ હોય, 'અભાવ'નો ઉત્પાદ ના;
'ભાવો' કરે છે નાશ ને ઉત્પાદ ગુણપર્યાયમાં. ૧૫.

जीवादि सौ छे 'भाव', जीवगुण चेतना उपयोग छे;
जीवपर्ययो तिर्यच-नारक-देव-मनुज अनेक छे. १६.

मनुजत्वथी व्यय पामीने देवादि देही थाय छे;
त्यां जीवभाव न नाश पामे, अन्य नहि उद्भव लहे. १७.

जन्मे मरे छे ते ज, तोपण नाश-उद्भव नव लहे;
सुर-मानवादिक पर्ययो उत्पन्ने लय थाय छे. १८.

ऐ रीत सत्-व्यय ने असत्-उत्पाद होय न जीवने;
सुरनरप्रमुख गतिनामनो हृदयुक्त काळ ज होय छे. १९.

ज्ञानावरण इत्यादि भावो जीव सह अनुबद्ध छे;
तेनो करीने नाश, पामे जीव सिद्धि अपूर्वने. २०.

गुणपर्यये संयुक्त जीव संसरण करतो ऐ रीते
उद्भव, विलय, वळी भाव-विलय, अभाव-उद्भवने करे. २१.

जीवद्रव्य, पुद्गलकाय, नभ ने अस्तिकायो शेष बे
अणकृतक छे, अस्तित्वमय छे, लोककारणभूत छे. २२.

सत्तास्वभावी जीव ने पुद्गल तणा परिणमनथी
छे सिद्धि जेनी, काळ ते भाख्यो जिणंदे नियमथी. २३.

रसवर्णपंचक, स्पर्श-अष्टक, गंधयुगल विहीन छे,
छे मूर्तिहीन, अगुरुलघुक छे, काळ वर्तनलिंग छे. २४.

छे समय, निमिष, कळा, घडी, दिनरात, मास, ऋतु अने
जे अयन ने वर्षादि छे, ते काळ पर आयत्त छे. २५.

- 'चिर' 'शीघ्र' नहि मात्रा विना, मात्रा नहीं पुद्गल विना,
ते कारणे पर-आश्रये उत्पन्न भाख्यो काळ आ. २६.
- छे जीव, चेतयिता, प्रभु, उपयोगचिह्न, अमूर्त छे,
कर्ता अने भोक्ता, शरीरप्रमाण, कर्म युक्त छे. २७.
- सौ कर्ममळथी मुक्त आत्मा पामीने लोकाग्रने,
सर्वज्ञदर्शी ते अनंत अनिन्द्रि सुखने अनुभवे. २८.
- स्वयमेव चेतक। सर्वज्ञानी-सर्वदर्शी थाय छे,
ने निज अमूर्त अनंत अव्याबाध सुखने अनुभवे. २९.
- जे चार प्राणे जीवतो पूर्वे, जीवे छे, जीवशे,
ते जीव छे; ने प्राण इन्द्रिय-आयु-बळ-उच्छ्वास छे. ३०.
- जे अगुरुलघुक अनंत ते-रूप सर्व जीवो परिणमे;
सौना प्रदेश असंख्य; कतिपय लोकव्यापी होय छे; ३१.
- अव्यापी छे कतिपय; वळी निर्दोष सिद्ध जीवो घणा;
मिथ्यात्व-योग-कषाययुत संसारी जीव बहु जाणवा. ३२.
- ज्यम दूधमां स्थित पद्मरागमणि प्रकाशे दूधने,
त्यम देहमां स्थित देही देहप्रमाण व्यापकता लहे. ३३.
- तन तन धरे जीव, तन महीं अैक्यस्थ पण नहि अेक छे,
जीव विविध अध्यवसाययुत, रजमळमलिन थईने भमे. ३४.
- जीवत्व नहि ने सर्वथा तदभाव पण नहि जेमने,
ते सिद्ध छे—जे देहविरहित वचनविषयातीत छे. ३५.

- ऊपजे नहीं को कारणे ते सिद्ध तेथी न कार्य छे,
उपजावता नथी कांई पण तेथी न कारण पण ठरे. ३६.
- सद्भाव जो नहि होय तो ध्रुव, नाश, भव्य, अभव्य ने
विज्ञान, अणविज्ञान, शून्य, अशून्य—अे कंई नव घटे. ३७.
- त्रणविध चेतकभावथी को जीवराशि 'कार्य'ने,
को जीवराशि 'कर्मफळ'ने कोई चेत 'ज्ञान'ने. ३८.
- वेदे कर्मफळ स्थावरो, त्रस कार्ययुत फळ अनुभवे,
प्राणित्वथी अतिक्रांत जे ते जीव वेदे ज्ञानने. ३९.
- छे ज्ञान ने दर्शन सहित उपयोग युगल प्रकारनो;
जीवद्रव्यने ते सर्व काळ अनन्यरूपे जाणवो. ४०.
- मति, श्रुत, अवधि, मनः, केवळ—पांच भेदो ज्ञानना;
कुमति, कुश्रुत, विभंग—त्रण पण ज्ञान साथे जोडवां. ४१.
- दर्शन तणा चक्षु-अचक्षुरूप, अवधिरूप ने
निःसीमविषय अनिधन केवळरूप भेद कहेल छे. ४२.
- छे ज्ञानथी नहि भिन्न ज्ञानी, ज्ञान तोय अनेक छे;
ते कारणे तो विश्वरूप कह्युं दरवने ज्ञानीअे. ४३.
- जो द्रव्य गुणथी अन्य ने गुण अन्य मानो द्रव्यथी,
तो थाय द्रव्य-अनंतता वा थाय नास्ति द्रव्यनी. ४४.
- गुण-द्रव्यने अविभक्तरूप अनन्यता बुधमान्य छे;
पण त्यां विभक्त अनन्यता वा अन्यता नहि मान्य छे. ४५.

व्यपदेश ने संस्थान, संख्या, विषय बहु ये होय छे;
ते तेमनां अन्यत्व तेम अनन्यतामां पण घटे. ४६.

धनथी 'धनी' ने ज्ञानथी 'ज्ञानी'—द्विधा व्यपदेश छे,
ते रीत तत्त्वज्ञो कहे अेकत्व तेम पृथक्त्वने. ४७.

जो होय अर्थांतरपणुं अन्योन्य ज्ञानी-ज्ञानने,
बन्ने अचेतनता लहे—जिनदेवने नहि मान्य जे. ४८.

रे ! जीव ज्ञानविभिन्न नहि समवायथी ज्ञात्री बने;
'अज्ञानी' अेवुं वचन ते अेकत्वनी सिद्धि करे. ४९.

समवर्तिता समवाय छे, अपृथक्त्व ते, अयुतत्व ते;
ते कारणे भाखी अयुतसिद्धि गुणो ने द्रव्यने. ५०.

परमाणुमां प्ररूपित वरण, रस, गंध, तेम ज स्पर्श जे,
अणुथी अभिन्न रही विशेष वडे प्रकाश भेदने; ५१.

त्यम ज्ञानदर्शन जीवनियत अनन्य रहीने जीवथी,
अन्यत्वना कर्ता बने व्यपदेशथी—न स्वभावथी. ५२.

जीवो अनादि-अनंत, सांत, अनंत छे जीवभावथी,
सद्भावथी नहि अंत होय; प्रधानता गुण पांचथी. ५३.

अे रीत सत्-व्यय ने असत्-उत्पाद जीवने होय छे
—भाख्युं जिने, जे पूर्व-अपर विरुद्ध पण अविरुद्ध छे. ५४.

तिर्यच-नारक-देव-मानव नामनी छे प्रकृति जे,
ते व्यय करे सत् भावनो, उत्पाद असत तणो करे. ५५.

- परिणाम, उदय, क्षयोपशम, उपशम, क्षये संयुक्त जे,
ते पांच जीवगुण जाणवा; बहु भेदमां विस्तीर्ण छे. ५६.
- पुद्गलकरमने वेदतां आत्मा करे जे भावने,
ते भावनो ते जीव छे कर्ता—कह्युं जिनशासने. ५७.
- पुद्गलकरम विण जीवने उपशम, उदय, क्षायिक अने
क्षायोपशमिक न होय, तेथी कर्मकृत अे भाव छे. ५८.
- जो भावकर्ता कर्म, तो शुं कर्मकर्ता जीव छे ?
जीव तो कदी करतो नथी निज भाव विण कई अन्यने. ५९.
- रे ! भाव कर्मनिमित्त छे ने कर्म भावनिमित्त छे,
अन्योन्य नहि कर्ता खरे; कर्ता विना नहि थाय छे. ६०.
- निज भाव करतो आत्मा कर्ता खरे निज भावनो,
कर्ता न पुद्गलकर्मनो;—उपदेश जिननो जाणवो. ६१.
- रे ! कर्म आपस्वभावथी निज कर्मपर्ययने करे,
आत्माय कर्मस्वभावरूप निज भावथी निजने करे. ६२.
- जो कर्म कर्म करे अने आत्मा करे बस आत्मने,
क्यम कर्म फळ दे जीवने ? क्यम जीव ते फळ भोगवे ? ६३.
- अवगाढ २ गाढ भरेल छे सर्वत्र पुद्गलकायथी
आ लोक बादर-सूक्ष्मथी, विधविध अनंतानंतथी. ६४.
- आत्मा करे निज भाव ज्यां, त्यां पुद्गलो निज भावथी
कर्मत्वरूपे परिणमे अन्योन्य-अवगाहित थई. ६५.

જ્યમ સ્કંધરચના બહુવિધા દેખાય છે પુદ્ગલ તળી
પરથી અકૃત, તે રીત જાણો વિવિધતા કર્મો તળી. ૬૬.

જીવ-પુદ્ગલો અન્યોન્યમાં અવગાહ ગ્રહીને બદ્ધ છે;
કાળે વીયોગ લહે તદા સુખદુઃખ આપે-ભોગવે. ૬૭.

તેથી કરમ, જીવભાવથી સંયુક્ત, કર્તા જાણવું;
ભોક્તાપણું તો જીવને ચેતકપણે તત્કળ તણું. ૬૮.

કર્તા અને ભોક્તા થતો એ રીત નિજ કર્મો વડે
જીવ મોહથી આચ્છન્ન સાંત અનંત સંસારે ભમે. ૬૯.

જિનવચનથી લહી માર્ગ જે, ઉપશાંતક્ષીણમોહી બને,
જ્ઞાનાનુમાર્ગ વિષે ચરે, તે ધીર શિવપુરને વરે. ૭૦.

એક જ મહાત્મા તે દ્વિભેદ અને ત્રિલક્ષણ ઉક્ત છે,
ચતુષ્રમણયુત, પંચાગ્રગુણપરધાન જીવ કહેલ છે; ૭૧.

ઉપયોગી ષટ-અપક્રમસહિત છે, સત્તભંગીસત્ત્વ છે,
જીવ અષ્ટ-આશ્રય, નવ-અરથ, દશસ્થાનગત ભાખેલ છે. ૭૨.

પ્રકૃતિ-સ્થિતિ-પરદેશ-અનુભવબંધથી પરિમુક્તને
ગતિ હોય ડુંચે; શેષને વિદિશા તજી ગતિ હોય છે. ૭૩.

જડરૂપ પુદ્ગલકાય કેરા ચાર ભેદો જાણવા;
તે સ્કંધ, તેનો દેશ, સ્કંધપ્રદેશ, પરમાણુ કહ્યા. ૭૪.

પૂરણ-સકળ તે 'સ્કંધ' છે ને અર્ધ તેનું 'દેશ' છે,
અર્ધાર્ધ તેનું 'પ્રદેશ' ને અવિભાગ તે 'પરમાણુ' છે. ૭૫.

- सौ स्कंध बादर-सूक्ष्मां 'पुद्गल' तणो व्यवहार छे;
छ विकल्प छे स्कंधो तणा, जेथी त्रिजग निष्पन्न छे. ७६.
- जे अंश अंतिम स्कंधनो, परमाणु जाणो तेहने;
ते अेक ने अविभाग, शाश्वत, मूर्तिप्रभव, अशब्द छे. ७७.
- आदेशमात्रथी मूर्त, धातुचतुष्कनो छे हेतु जे,
ते जाणवो परमाणु—जे परिणामी, आप अशब्द छे. ७८.
- छे शब्द स्कंधोत्पन्न; स्कंधो अणुसमूहसंघात छे,
स्कंधाभिधाते शब्द ऊपजे, नियमथी उत्पाद्य छे. ७९.
- नहि अनवकाश, न सावकाश प्रदेशथी, अणु शाश्वतो,
भेत्ता-रचयिता स्कंधनो, प्रविभागी संख्या-काळनो. ८०.
- अेक ज वरण-रस-गंध न बे स्पर्शयुत परमाणु छे,
ते शब्दहेतु, अशब्द छे, ने स्कंधमां पण द्रव्य छे. ८१.
- इन्द्रिय वडै उपभोग्य, इन्द्रिय, काय, मन ने कर्म जे,
वळी अन्य जे कई मूर्त ते सघळुंय पुद्गल जाणजे. ८२.
- धर्मास्तिकाय अवर्णगंध, अशब्दरस, अस्पर्श छे;
लोकावगाही, अखंड छे, विस्तृत, असंख्यप्रदेश छे. ८३.
- जे अगुरुलघुक अनंत ते-रूप सर्वदा अे परिणमे,
छे नित्य, आप अकार्य छे, गतिपरिणमितने हेतुं छे. ८४.
- ज्यम जगतमां जळ मीनने अनुग्रह करे छे गमनमां,
त्यम धर्म पण अनुग्रह करे जीव-पुद्गलोने गमनमां. ८५.

- ज्यम धर्मनामक द्रव्य तेम अधर्मनामक द्रव्य छे;
पण द्रव्य आ छे पृथ्वी माफक हेतु थितिपरिणमितने. ८६.
- धर्माधरम होवाथी लोक-अलोक ने स्थितिगति बने;
ते उभय भिन्न-अभिन्न छे ने सकळलोकप्रमाण छे. ८७.
- धर्मास्ति -गमन करे नहीं, न करावतो परद्रव्यने;
जीव-पुद्गलोना गतिप्रसार तणो उदासीन हेतु छे. ८८.
- रे! जेमने गति होय छे, तेओ ज वळी स्थिर थाय छे;
ते सर्व निज परिणामथी ज करे गतिस्थितिभावने. ८९.
- जे लोकमां जीव-पुद्गलोने, शेष द्रव्य समस्तने
अवकाश दे छे पूर्ण, ते आकाशनामक द्रव्य छे. ९०.
- जीव-पुद्गलादिक शेष द्रव्य अनन्य जाणो लोकथी;
नभ अंतशून्य अनन्य तेम ज अन्य छे ओ लोकथी. ९१.
- अवकाशदायक आभ गति-स्थितिहेतुता पण जो धरे,
तो ऊर्ध्वगतिपरधान सिद्धो केम तेमां स्थिति लहे? ९२.
- भाखी जिनोअे लोकना अग्रे स्थिति सिद्धो तणी,
ते कारणे जाणो—गतिस्थिति आभमां होती नथी. ९३.
- नभ होय जो गतिहेतु ने स्थितिहेतु पुद्गल-जीवने,
तो हानि थाय अलोकनी, लोकान्त पामे वृद्धिने. ९४.
- तेथी गतिस्थितिहेतुओ धर्माधरम छे, नभ नहीं;
भाख्युं जिनोअे आम लोकस्वभावना श्रोता प्रति. ९५.

- धर्माधरम-नभने समानप्रमाणयुत अपृथक्त्वथी,
वळी भिन्नभिन्न विशेषथी अेकत्व ने अन्यत्व छे. ६६.
- आत्मा अने आकाश, धर्म, अधर्म, काळ अमूर्त छे,
छे मूर्त पुद्गलद्रव्य; तेमां जीव छे चेतन खरे. ६७.
- जीव-पुद्गलो सहभूत छे सक्रिय, निष्क्रिय शेष छे;
छे काळ पुद्गलने करण, पुद्गल करण छे जीवने. ६८.
- छे जीवने जे विषय इन्द्रियग्राह्य, ते सौ मूर्त छे;
बाकी बधुंय अमूर्त छे; मन जाणतुं ते उभयने. ६९.
- परिणामभव छे काळ, काळपदार्थभव परिणाम छे;
—आ छे स्वभावो उभयना; क्षणभंगी ने ध्रुव काळ छे. १००.
- छे 'काळ' संज्ञा सत्प्ररूपक तेथी काळ सुनित्य छे;
उत्पन्नध्वंसी अन्य जे ते दीर्घस्थायी पण ठरे. १०१.
- आ जीव, पुद्गल, काळ, धर्म, अधर्म तेम ज नभ विषे
छे 'द्रव्य'संज्ञा सर्वने, कायत्व छे नहि काळने. १०२.
- अे रीत प्रवचनसाररूप 'पंचास्तिसंग्रह' जाणीने
जे जीव छोडे रागद्वेष, लहे सकळदुखमोक्षने. १०३.
- आ अर्थ जाणी, अनुगमन-उद्यम करी, हणी मोहने;
प्रशमावी रागद्वेष, जीव उत्तर-पूरव विरहित बने. १०४.



२. नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन

- शिरसा नमी अपुनर्जनमना हेतु श्री महावीरने,
भाखुं पदार्थविकल्प तेम ज मोक्ष केरा मार्गिने. १०५.
- सम्यक्त्वज्ञान समेत चारित रागद्वेषविहीन जे,
ते होय छे निर्वाणमारग लब्धबुद्धि भव्यने. १०६.
- ‘भावो’ तणी श्रद्धा सुदर्शन, बोध तेनो ज्ञान छे,
वधुं रूढ मार्ग थतां विषयमां साम्य ते चारित्र छे. १०७.
- बे भाव—जीव अजीव, तद्गत पुण्य तेम ज पाप ने
आसरव, संवर, निर्जरा, वळी बंध, मोक्ष—पदार्थ छे. १०८.
- जीवो द्विविध—संसारी, सिद्धो; चेतनात्मक उभय छे;
उपयोगलक्षण उभय; अेक सदेह, अेक अदेह छे. १०९.
- भू-जल-अनल-वायु-वनस्पतिकाय जीवसहित छे;
बहु काय ते अतिमोहसंयुत स्पर्श आपे जीवने. ११०.
- त्यां जीव त्रण स्थावरतनु, त्रस जीव अग्नि-समीरना;
अे सर्व मनपरिणामविरहित अेक-इन्द्रिय जाणवा. १११.
- आ पृथ्वीकायिक आदि जीवनिकाय पांच प्रकारना,
सघळाय मनपरिणामविरहित जीव अेकेन्द्रिय कह्या. ११२.
- जेवा जीवो अंडस्थ, मूर्छावस्थ वा गर्भस्थ छे;
तेवा बधा आ पंचविध अेकेन्द्रि जीवो जाणजे. ११३.

- शंबूक, छीपो, मातृवाहो, शंख, कृमि पग-वगरना
—जे जाणता रसस्पर्शने, ते जीव द्वीन्द्रिय जाणवा. ११४.
- जू, कुंभी, माकड, कीडी, तेम ज वृश्चिकादिक जंतु जे
रस, गंध तेम ज स्पर्श जाणे, जीव त्रीन्द्रिय तेह छे. ११५.
- मधमाख, भ्रमर, पतंग, माखी, डांस, मच्छर आदि जे,
ते जीव जाणे स्पर्शने, रस, गंध तेम ज रूपने. ११६.
- स्पर्शादिपंचक जाणतां तिर्यच-नारक-सुर-नरो
—जळचर, भूचर के खेचरो—बळवान पंचेन्द्रिय जीवो. ११७.
- नर कर्मभूमिज भोगभूमिज, देव चार प्रकारना,
तिर्यच बहुविध, नारकोना पृथ्वीगत भेदो कह्या. ११८.
- गतिनाम ने आयुष्य पूर्वनिबद्ध ज्यां क्षय थाय छे,
त्यां अन्य गति-आयुष्य पामे जीव निजलेश्यावशे. ११९.
- आ उक्त जीवनिकाय सर्वे देहसहित कहेल छे,
ने देहविरहित सिद्ध छे; संसारी भव्य-अभव्य छे. १२०.
- रे! इन्द्रियो नहि जीव, षड्विध क्रय पण नहि जीव छे;
छे तेमनामां ज्ञान जे बस ते ज जीव निर्दिष्ट छे. १२१.
- जाणे अने देखे बधुं, सुख अभिलषे, दुखथी डरे,
हित-अहित जीव करे अने हित-अहितनुं फळ भोगवे. १२२.
- बीजाय बहु पर्यायथी अ रीत जाणी जीवने,
जाणो अजीवपदार्थ ज्ञानविभिन्न जड लिंगो वडे. १२३.

छे जीवगुण नहि आभ-धर्म-अधर्म-पुद्गल-काळमां;
तेमां अचेतना कही, चेतनपणुं कहुं जीवमां. १२४.

सुखदुःखसंचेतन, अहितनी भीति, उद्यम हित विषे
जेने कदी होतां नथी, तेने अजीव श्रमणो कहे. १२५.

संस्थान-संघातो, वरण-रस-गंध-शब्द-स्पर्श जे,
ते बहु गुणो ने पर्ययो पुद्गलदरवनिष्पन्न छे. १२६.

जे चेतनागुण, अरसरूप, अगंधशब्द, अव्यक्त छे,
निर्दिष्ट नहि संस्थान, इन्द्रियग्राह्य नहि, ते जीव छे. १२७.

संसारगत जे जीव छे परिणाम तेने थाय छे,
परिणामथी कर्मो, करमथी गमन गतिमां थाय छे. १२८.

गति प्राप्तने तन थाय, तनथी इन्द्रियो वळी थाय छे,
अेनाथी विषय ग्रहाय, रागद्वेष तेथी थाय छे. १२९.

अे रीत भाव अनादिनिधन अनादिसांत थया करे
संसारचक्र विषे जीवोने—अेम जिनदेवो कहे. १३०.

छे राग, द्वेष, विमोह, चित्तप्रसादपरिणति जेहने,
ते जीवने शुभ वा अशुभ परिणामनो सद्भाव छे. १३१.

शुभ भाव जीवना पुण्य छे ने अशुभ भावो पाप छे;
तेना निमित्ते पौद्गलिक परिणाम कर्मपणुं लहे. १३२.

छे कर्मनुं फळ विषय, तेने नियमथी अक्षो वडे
जीव भोगवे दुःखे-सुखे, तेथी करम ते मूर्त छे. १३३.

- मूरत मूरत स्पर्शे अने मूरत मूरत बंधन लहे;
आत्मा अमूरत ने करम अन्योन्य अवगाहन लहे. १३४.
- छे रागभाव प्रशस्त, अनुकंपासहित परिणाम छे,
मनमां नहीं कालुष्य छे, त्यां पुण्य-आस्रव होय छे. १३५.
- अर्हत-साधु-सिद्ध प्रत्ये भक्ति, चेष्टा धर्ममां,
गुरुओ तणुं अनुगमन—अे परिणाम राग प्रशस्तना. १३६.
- दुःखित, तृषित वा क्षुधित देखी दुःख पामी मन विषे
करुणाथी वर्ते जेह, अनुकंपा सहित ते जीव छे. १३७.
- मद-क्रोध अथवा लोभ-माया चित्त-आश्रय पामीने
जीवने करे जे क्षोभ, तेने कलुषता ज्ञानी कहे. १३८.
- चर्या प्रमादभरी, कलुषता, लुब्धता विषयो विषे,
परिताप ने अपवाद परना, पाप-आस्रवने करे. १३९.
- संज्ञा, त्रिलेश्या, इन्द्रिवशता, आर्तरौद्र ध्यान बे,
वळी मोह ने दुर्युक्त ज्ञान प्रदान पाप तणुं करे. १४०.
- मार्गे रही संज्ञा-कषायो-इन्द्रिनो निग्रह करे,
पापासरवनुं छिद्र तेने तेटलुं रुंधाय छे. १४१.
- सौ द्रव्यमां नहि राग-द्वेष-विमोह वर्ते जेहने,
शुभ-अशुभ कर्म न आस्रवे समदुःखसुख ते भिक्षुने. १४२.
- ज्यारे न योगे पुण्य तेम ज पाप वर्ते विरतने,
त्यारे शुभाशुभकृत करमनो थाय संवर तेहने. १४३.

- जे योग-संवरयुक्त जीव बहुविध तपो सह परिणमे,
तेने नियमथी निर्जरा बहु कर्म केरी थाय छे. १४४.
- संवर सहित, आत्मप्रयोजननो प्रसाधक आत्मने
जाणी, सुनिश्चळ ज्ञान ध्यावे, ते करमरज निजरी. १४५.
- नहि रागद्वेषविमोह ने नहि योगसेवन जेहने,
प्रगटे शुभाशुभ बाळनारो ध्यान-अग्नि तेहने. १४६.
- जो आतमा उपरक्त करतो अशुभ वा शुभ भावने,
तो ते वडे अे विविध पुद्गलकर्मथी बंधाय छे. १४७.
- छे योगहेतुक ग्रहण, मनवचकाय-आश्रित योग छे;
छे भावहेतुक बंध, ने मोहादिसंयुत भाव छे. १४८.
- हेतु चतुर्विध अष्टविध कर्मो तणां कारण कह्यां,
तेनांय छे रागादि, ज्यां रागादि नहि त्यां बंध ना. १४९.
- हेतु-अभावे नियमथी आस्रवनिरोधन ज्ञानीने,
आसरवभाव-अभावमां कर्मो तणुं रोधन बने; १५०.
- कर्मो-अभावे सर्वज्ञानी सर्वदर्शी थाय छे,
ने अक्षरहित, अनंत, अव्याबाध सुखने ते लहे. १५१.
- दृग्ज्ञानथी परिपूर्ण ने परद्रव्यविरहित ध्यान जे,
ते निर्जरानो हेतु थाय स्वभावपरिणत साधुने. १५२.
- संवरसहित ते जीव पूर्व समस्त कर्मो निजरी
ने आयुवेद्यविहिन थई भवने तजे; ते मोक्ष छे. १५३.

- आत्मस्वभाव अनन्यमय निर्विघ्न दर्शन ज्ञान छे;
दृग्ज्ञाननियत अनिद्य जे अस्तित्व ते चारित्र छे. १५४.
- निजभावनियत अनियतगुणपर्ययपणे परसमय छे;
ते जो करे स्वकसमयने तो कर्मबंधनथी छूटे. १५५.
- जे रागथी परद्रव्यमां करतो शुभाशुभ भावने,
ते स्वकचरित्रथी भ्रष्ट, परचारित्र आचरनार छे. १५६.
- रे ! पुण्य अथवा पाप जीवने आस्रवे जे भावथी,
तेना वडे ते 'परचरित' निर्दिष्ट छे जिनदेवथी. १५७.
- सौ-संगमुक्त अनन्यचित्त स्वभावथी निज आत्मने
जाणे अने देखे नियत रही, ते स्वचरितप्रवृत्त छे. १५८.
- ते छे स्वचरितप्रवृत्त, जे परद्रव्यथी विरहितपणे
निज ज्ञानदर्शनभेदने जीवथी अभिन्न ज आचरे. १५९.
- धर्मादिनी श्रद्धा सुदृग्, पूर्वांगबोध सुबोध छे,
तपमांही चेषा चरण—अे व्यवहारमुक्तिमार्ग छे. १६०.
- जे जीव दर्शनज्ञानचरण वडे समाहित होईने,
छोडे ग्रहे नहि अन्य कंई पण, निश्चये शिवमार्ग छे. १६१.
- जाणे, जुअे ने आचरे निज आत्मने आत्मा वडे,
ते जीव दर्शन, ज्ञान ने चारित्र छे निश्चितपणे. १६२.
- जाणे-जुअे छे सर्व तेथी सौख्य-अनुभव मुक्तने;
—आ भाव जाणे भव्य जीव, अभव्य नहि श्रद्धा लहे. १६३.

दृग, ज्ञान ने चारित्र्य छे शिवमार्ग तेथी सेववां
—संते कह्युं, पण हेतु छे अे बंधना वा मोक्षना. १६४.

जिनवरप्रमुखनी भक्ति द्वारा मोक्षनी आशा धरे
अज्ञानथी जो ज्ञानी जीव, तो परसमयरत तेह छे. १६५.

जिन-सिद्ध-प्रवचन-चैत्य-मुनिगण-ज्ञाननी भक्ति करे,
ते पुण्यबंध लहे घणो, पण कर्मनो क्षय नव करे. १६६.

अणुमात्र जेने हृदयमां परद्रव्य प्रत्ये राग छे,
हो सर्वआगमधर भले, जाणे नहीं स्वक-समयने. १६७.

मनना भ्रमणथी रहित जे राखी शके नहि आत्मने,
शुभ वा अशुभ कर्मो तणो नहि रोध छे ते जीवने. १६८.

ते कारणे मोक्षेच्छु जीव असंग ने निर्मम बनी
सिद्धो तणी भक्ति करे, उपलब्धि जेथी मोक्षनी. १६९.

संयम तथा तपयुक्तने पण दूरतर निर्वाण छे,
सूत्रो, पदार्थो, जिनवरो प्रति चित्तमां रुचि जो रहे. १७०.

जिन-सिद्ध-प्रवचन-चैत्य प्रत्ये भक्ति धारी मन विषे,
संयम परम सह तप करे, ते जीव पामे स्वग्नि. १७१.

तेथी न करवो राग जरीये कयांय पण मोक्षेच्छुअे;
वीतराग थईने अे रीते ते भव्य भवसागर तरे. १७२.

में मार्ग-उद्योतार्थ, प्रवचनभक्तिथी प्रेरईने,
कह्युं सर्वप्रवचन-सारभूत 'पंचास्तिसंग्रह' सूत्रने. १७३.

ॐ

श्री

नियमसार

पद्यानुवाद

१. जीव अधिकार

(हसिगीत)

नमीने अनंतोत्कृष्ट दर्शनज्ञानमय जिन वीरने,
कहुं नियमसार हुं केवळीश्रुतकेवळीपरिकथितने. १

छे मार्गनुं ने मार्गफळनुं कथन जिनवरशासने;
त्यां मार्ग मोक्षोपाय छे ने मार्गफळ निर्वाण छे. २

जे नियमथी कर्तव्य अवां रत्नत्रय ते नियम छे;
विपरीतना परिहार अर्थे 'सार' पद योजेल छे. ३

छे नियम मोक्षोपाय, तेनुं फळ परम निर्वाण छे;
वळी आ त्रणेनुं भेदपूर्वक भिन्न निरूपण होय छे. ४

रे ! आप्त-आगम-तत्त्वनी श्रद्धाथी समकित होय छे;
निःशेषदोषविहीन जे गुणसकळमय ते आप्त छे. ५

ભય, રોષ, રાગ, ક્ષુધા, તૃષ્ણા, મદ, મોહ, ચિંતા, જન્મ ને રતિ, રોગ, નિદ્રા, સ્વેદ, ખેદ, જરાદિ દોષ અઢાર છે. ૬.

સૌ દોષ રહિત, અનંતજ્ઞાનદૃગાદિ વૈભવયુક્ત જે, પરમાત્મ તે કહેવાય, તદ્વિપરીત નહિ પરમાત્મ છે. ૭.

પરમાત્મવાણી શુદ્ધ ને પૂર્વાપરે નિર્દોષ જે, તે વાણીને આગમ કહી; તેણે કહ્યા તત્ત્વાર્થને. ૮.

જીવદ્રવ્ય, પુદ્ગલ, કાલ તેમ જ આમ, ધર્મ, અધર્મ—એ ભાખ્યા જિને તત્ત્વાર્થ, ગુણપર્યાય વિધવિધ યુક્ત જે. ૯.

ઉપયોગમય છે જીવ ને ઉપયોગ દર્શન-જ્ઞાન છે; જ્ઞાનોપયોગ સ્વભાવ તેમ વિભાવરૂપ દ્વિવિધ છે. ૧૦.

અસહાય, ઇન્દ્રિવિહીન, કેવલ, તે સ્વભાવિક જ્ઞાન છે; સુજ્ઞાન ને અજ્ઞાન—એમ વિભાવજ્ઞાન દ્વિવિધ છે. ૧૧.

મતિ, શ્રુત, અવધિ, મન:પર્યાય—ભેદ છે સુજ્ઞાનના; કુમતિ, કુઅવધિ, કુશ્રુત—એ ત્રણ ભેદ છે અજ્ઞાનના. ૧૨.

ઉપયોગ દર્શનનો સ્વભાવ-વિભાવરૂપ દ્વિવિધ છે; અસહાય, ઇન્દ્રિવિહીન, કેવલ, તે સ્વભાવ કહેલ છે. ૧૩.

ચક્ષુ, અચક્ષુ, અવધિ—ત્રણ દર્શન વિભાવિક છે કહ્યાં; નિરપેક્ષ, સ્વપરાપેક્ષ—એ બે ભેદ છે પર્યાયના. ૧૪.

તિર્યંચ-નારક-દેવ-નર પર્યાય વૈભાવિક કહ્યા, પર્યાય કર્મોપાધિવર્જિત તે સ્વભાવિક ભાખ્યા. ૧૫.

- छे कर्मभूमिज भोगभूमिज—भेद बे मनुजो तणा,
 ने पृथ्वीभेदे सप्त भेदो जाणवा नारक तणा. १६.
- तिर्यचना छे चौद भेदो, चार भेदो देवना;
 आ सर्वनो विस्तार छे निर्दिष्ट लोकविभागमां. १७.
- आत्मा करे, वळी भोगवे पुद्गलकरम व्यवहारथी;
 ने कर्मजनित विभावनो कर्तादि छे निश्चय थकी. १८.
- पूर्वोक्त पर्यायोथी छे व्यतिरिक्त जीव द्रव्यार्थिके;
 ने उक्त पर्यायोथी छे संयुक्त पर्यायार्थिके. १९.



२. अजीव अधिकार

- परमाणु तेम ज स्कंध अे बे भेद पुद्गलद्रव्यना;
 छ विकल्प छे स्कंधो तणा ने भेद बे परमाणुना. २०.
- अतिथूलथूल, थूल, थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मथूल, वळी सूक्ष्म ने
 अतिसूक्ष्म—अेम धरादि पुद्गलस्कंधना छ विकल्प छे. २१.
- भूपर्वतादिक स्कंधने अतिथूलथूल जिने कह्या,
 घी-तेल-जळ इत्यादिने वळी थूल स्कंधो जाणवा; २२.
- आतप अने छायादिने थूलसूक्ष्म स्कंधो जाणजे,
 चतुरिद्रिना जे विषय तेने सूक्ष्मथूल कह्या जिने; २३.
- वळी कर्मवर्गणयोग्य स्कंधो सूक्ष्म स्कंधो जाणवा,
 तेनाथी विपरीत स्कंधने अतिसूक्ष्म स्कंधो वर्णव्या. २४.

જે હેતુ ધાતુચતુષ્કનો તે કારણાણુ જાણવો;
સ્કંધો તણા અવસાનને વઢી કાર્યપરમાણુ કહ્યો. ૨૫.

જે આદિ-મધ્યે અંતમાં પોતે જ છે, અવિભાગી છે,
જે ઇન્દ્રિથી નહિ ગ્રાહ્ય છે, પરમાણુ જાણો તેહને. ૨૬.

બે સ્પર્શ, રસ-રૂપ-ગંધ એક, સ્વભાવગુણમય તેહ છે;
જિનસમયમાંહી વિભાવગુણ સર્વાક્ષપ્રગટ કહેલ છે. ૨૭.

પરિણમ પરનિરપેક્ષ તેહ સ્વભાવપર્યય જાણવો;
પરિણામ સ્કંધસ્વરૂપ તેહ વિભાવપર્યય જાણવો. ૨૮.

પરમાણુને 'પુદ્ગલદરવ' વ્યપદેશ છે નિશ્ચય થકી;
ને સ્કંધને 'પુદ્ગલદરવ' વ્યપદેશ છે વ્યવહારથી. ૨૯.

જીવ-પુદ્ગલોને ગમન-સ્થાનનિમિત્ત ધર્મ-અધર્મ છે;
જીવાદિ સર્વ પદાર્થને અવગાહહેતુ આભ છે. ૩૦.

આવલિ-સમયના ભેદથી બે ભેદ વા ત્રણ ભેદ છે;
સંસ્થાનથી સંખ્યાતગુણ આવલિપ્રમાણ અતીત છે. ૩૧.

જીવોથી ને પુદ્ગલથી પણ સમયો અનંતગુણા કહ્યા;
તે કાલ છે પરમાર્થ, જે છે સ્થિત લોકાકાશમાં. ૩૨.

જીવપુદ્ગલાદિ પદાર્થને પરિણમનકારણ કાલ છે;
ધર્માદિ ચાર સ્વભાવગુણપર્યાયવંત પદાર્થ છે. ૩૩.

જિનસમયમાંહી કાલ છોડી શેષ પાંચ પદાર્થ જે,
તે અસ્તિકાય કહ્યા; અનેકપ્રદેશયુત તે કાય છે. ૩૪.

- अणसंख्य, संख्य, अनंत होय प्रदेश मूर्तिक द्रव्यने,
अणसंख्य जाण प्रदेश धर्म, अधर्म तेम ज जीवने; ३५.
- अणसंख्य लोकाकाशमांही, अनंत जाण अलोकने,
छे काळ अेकप्रदेशी, तेथी न काळने कायत्व छे. ३६.
- छे मूर्त पुद्गलद्रव्य, शेष पदार्थ मूर्तिविहीन छे;
चैतन्ययुत छे जीव ने चैतन्यवर्जित शेष छे. ३७.

३. शुद्धभाव अधिकार

- छे बाह्यतत्त्व जीवादि सर्वे हेय, आत्मा ग्राह्य छे,
—जे कर्मथी उत्पन्न गुणपर्यायथी व्यतिरिक्त छे. ३८.
- जीवने न स्थान स्वभावनां, मानापमान तणां नहीं,
जीवने न स्थानो हर्षनां, स्थानो अहर्ष तणां नहीं. ३९.
- स्थितिबंधस्थानो, प्रकृतिस्थान, प्रदेशनां स्थानो नहीं,
अनुभागनां नहि स्थान जीवने, उदयनां स्थानो नहीं. ४०.
- स्थानो न क्षायिकभावनां, क्षायोपशमिक तणां नहीं,
स्थानो न उपशमभावनां के उदयभाव तणां नहीं. ४१.
- चउगतिभ्रमण नहि, जन्म-मरण न, रोग-शोक-जरा नहीं,
कुळ, योनि के जीवस्थान, मार्गणस्थान जीवने छे नहीं. ४२.
- निर्दंड ने निर्द्वंद्व, निर्मम, निःशरीर, नीराग छे,
निर्दोष, निर्भय, निरवलंबन, आत्मा निर्मूढ छे. ४३.

- નિર્ગ્રંથ છે, નિષ્કામ છે, નિઃક્રોધ, જીવ નિર્માન છે,
નિઃશલ્ય તેમ નીરાગ, નિર્મદ, સર્વદોષવિમુક્ત છે. ૪૪.
- સ્ત્રી-પુરુષ આદિક પર્યયો, રસવર્ણગંધસ્પર્શ ને
સંસ્થાન તેમ જ સંહનન સૌ છે નહીં જીવદ્રવ્યને. ૪૫.
- જીવ ચેતનાગુણ, અરસરૂપ, અગંધશબ્દ, અવ્યક્ત છે,
વળી લિંગગ્રહણવિહીન છે, સંસ્થાન ભાખ્યું ન તેહને. ૪૬.
- જેવા જીવો છે સિદ્ધિગત તેવા જીવો સંસારી છે,
જેથી જનમમરણાદિહીન ને અષ્ટગુણસંયુક્ત છે. ૪૭.
- અશરીર ને અવિનાશ છે, નિર્મલ, અતીન્દ્રિય, શુદ્ધ છે,
જ્યમ લોક-અગ્રે સિદ્ધ, તે રીત જાણ સૌ સંસારીને. ૪૮.
- આ ' સર્વ ભાવ કહેલ છે વ્યવહારનયના આશ્રયે;
સંસારી જીવ સમસ્ત સિદ્ધસ્વભાવી શુદ્ધનયાશ્રયે. ૪૯.
- પૂર્વોક્ત ભાવો પર-દરવ પરભાવ, તેથી હેય છે;
આત્મા જ છે આદેય, અંતઃતત્ત્વરૂપ નિજદ્રવ્ય જે. ૫૦.
- શ્રદ્ધાન વિપરીત-અભિનિવેશવિહીન તે સમ્યક્ત્વ છે;
સંશય-વિમોહ-વિભ્રાંતિ વિરહિત જ્ઞાન સમ્યગ્જ્ઞાન છે. ૫૧.
- ચલ-મલ-અગાઢપણા રહિત શ્રદ્ધાન તે સમ્યક્ત્વ છે;
આદેય-હેય પદાર્થનો અવબોધ સમ્યગ્જ્ઞાન છે. ૫૨.
- જિનસૂત્ર સમકિતહેતુ છે, ને સૂત્રજ્ઞાતા પુરુષ જે
તે જાણ અંતર્હેતુ, દૃગ્મોહક્ષયાદિક જેમને. ૫૩.

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान तेम ज चरण मुक्तिपंथ छे;
तेथी कहीश हुं चरणने व्यवहार ने निश्चय वडे. ५४.

व्यवहारनयचारित्रमां व्यवहारनुं तप होय छे;
तप होय छे निश्चय थकी, चारित्र ज्यां निश्चयनये. ५५.

४. व्यवहारचारित्र अधिकार

जीवस्थान, मार्गस्थान, योनि, कुलादि जीवनां जाणीने,
आरंभथी निवृत्तिरूप परिणाम ते व्रत प्रथम छे. ५६.

विद्वेष-राग-विमोहजनित मृषा तणा परिणामने
जे छोडता मुनिराज, तेने सर्वदा व्रत द्वितीय छे. ५७.

नगरे, अरण्ये, ग्राममां को वस्तु परनी देखीने
छोडे ग्रहणपरिणाम जे, ते पुरुषने व्रत तृतीय छे. ५८.

स्त्रीरूप देखी स्त्री प्रति अभिलाषभावनिवृत्ति जे,
वा मिथुनसंज्ञारहित जे परिणाम ते व्रत तुर्य छे. ५९.

निरपेक्ष भावन सहित सर्व परिग्रहोनी त्याग जे,
ते जाणवुं व्रत पांचमुं चारित्रभर वहनारने. ६०.

अवलोकी मार्ग धुराप्रमाण करे गमन मुनिराज जे
दिवसे ज प्रासुक मार्गमां, ईर्यासमिति तेहने. ६१.

निजस्तवन, परनिंदा, पिशुनता, हास्य, कर्कश वचनने
छोडी स्वपरहित जे वदे, भाषासमिति तेहने. ६२.

अनुमनन-कृत-कारितविहीन, प्रशस्त, प्रासुक अशनने
—परदत्तने मुनि जे ग्रहे, अेषणसमिति तेहने. ६३.

शास्त्रादि ग्रहतां-मूकतां मुनिना प्रयत परिणामने
आदाननिक्षेपण समिति कहेल छे आगम विषे. ६४.

जे भूमि प्रासुक, गूढ ने उपरोध ज्यां परनो नहीं,
मळत्याग त्यां करनारने समिति प्रतिष्ठापन तणी. ६५.

कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेष आदि अशुभना
परिहारने मनगुप्ति छे भाखेल नय व्यवहारमां. ६६.

स्त्री-राज-भोजन-चोरकथनी हेतु छे जे पापनी
तसु त्याग, वा अलीकादिनो जे त्याग, गुप्ति वचननी. ६७.

वध, बंध ने छेदनमयी, विस्तरण-संकोचनमयी
इत्यादि कायक्रिया तणी निवृत्ति तनगुप्ति कही. ६८.

मनमांथी जे रागादिनी निवृत्ति ते मनगुप्ति छे;
अलीकादिनी निवृत्ति अथवा मौन वाचागुप्ति छे. ६९.

जे कायकर्मनिवृत्ति कायोत्सर्ग ते तनगुप्ति छे;
हिंसादिनी निवृत्तिने वळी कायगुप्ति कहेल छे. ७०.

घनघातिकर्म विहीन ने चोत्रीश अतिशय युक्त छे,
कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त श्री अर्हत छे. ७१.

छे अष्ट कर्म विनष्ट, अष्ट महागुणे संयुक्त छे,
शाश्वत, परम ने लोक-अग्रविराजमान श्री सिद्ध छे. ७२.

परिपूर्ण पंचाचारमां, वळी धीर गुणगंभीर छे,
पंचेन्द्रिगजना दर्पदलने दक्ष श्री आचार्य छे. ७३.

रत्नत्रये संयुक्त ने निःकांक्षभावथी युक्त छे,
जिनवरकथित अर्थोपदेशे शूर श्री उवज्ञाय छे. ७४.

निर्ग्रथ छे, निर्मोह छे, व्यापारथी प्रविमुक्त छे,
चौविध आराधन विषे नित्यानुरक्त श्री साधु छे. ७५.

आ भावनामां जाणवुं चारित्र नय व्यवहारथी;
आना पछी भाखीश हुं चारित्र निश्चयनय थकी. ७६.



५. परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार

नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देवपर्यय हुं नहीं;
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. ७७.

हुं मार्गणास्थानो नहीं, गुणस्थान-जीवस्थानो नहीं;
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. ७८.

हुं बाळ-वृद्ध-युवान नहि, हुं तेमनुं कारण नहीं;
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. ७९.

हुं राग-द्वेष न, मोह नहि, हुं तेमनुं कारण नहीं;
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. ८०.

हुं क्रोध नहि, नहि मान, तेम ज लोभ-माया छुं नहीं;
कर्ता न, कारयिता न, अनुमंता हुं कर्तानो नहीं. ८१.

- आ भेदना अभ्यासथी माध्यस्थ थई चारित बने;
प्रतिक्रमण आदि कहीश हुं चारित्रदृढता कारणे. ८२.
- रचना वचननी छोडीने, रागादिभाव निवारीने,
जे जीव ध्यावे आत्मने, ते जीवने प्रतिक्रमण छे. ८३.
- छोडी समस्त विराधना, आराधनामां जे रहे,
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, प्रतिक्रमणमयता कारणे. ८४.
- जे छोडी अण-आचारने, आचारमां स्थिरता करे,
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, प्रतिक्रमणमयता कारणे. ८५.
- परित्यागी जे उन्मार्गने, जिनमार्गमां स्थिरता करे,
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, प्रतिक्रमणमयता कारणे. ८६.
- जे साधु छोडी शल्यने, निःशल्यभावे परिणमे,
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, प्रतिक्रमणमयता कारणे. ८७.
- जे साधु छोडी अगुप्तिभाव, त्रिगुप्तिगुप्तपणे रहे,
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, प्रतिक्रमणमयता कारणे. ८८.
- तजी आर्त तेम ज रौद्रने, ध्यावे धरमने, शुक्लने
ते प्रतिक्रमण कहेवाय छे, जिनवरकथित सूत्रो विषे. ८९.
- मिथ्यात्व-आदिक भावने चिरकाळ भाव्या छे जीवे;
सम्यक्त्व-आदिक भाव रे ! भाव्या नथी पूर्वे जीवे. ९०.
- निःशेष मिथ्याज्ञान-दर्शन-चरणने परित्यागीने,
सुज्ञान-दर्शन-चरण भावे, जीव ते प्रतिक्रमण छे. ९१.

आत्मा ज उत्तम-अर्थ छे, तत्रस्थ मुनि कर्मो हणे;
ते कारणे बस ध्यान उत्तम-अर्थनुं प्रतिक्रमण छे. ६२.

रही ध्यानमां तल्लीन, छोडे साधु दोष समस्तने;
ते कारणे बस ध्यान सौ अतिचारनुं प्रतिक्रमण छे. ६३.

प्रतिक्रमणनामक सूत्रमां ज्यम वर्णव्युं प्रतिक्रमणने
त्यम जाणी भावे भावना, तेने तदा प्रतिक्रमण छे. ६४.



६. निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार

परित्यागी जल्प समस्तने, भावी शुभाशुभ वारीने,
जे जीव ध्यावे आत्मने, पचखाण छे ते जीवने. ६५.

केवलदरश, केवलवीरज, कैवल्यज्ञानस्वभावी छे,
वळी सौख्यमय छे जेह ते हुं—अेम ज्ञानी चितवे. ६६.

निजभावने छोडे नहीं, परभाव कई पण नव ग्रहे,
जाणे-जुअे जे सर्व, ते हुं—अेम ज्ञानी चितवे. ६७.

प्रकृति-स्थिति-परदेश-अनुभवबंध विरहित जीव जे
छुं ते ज हुं—त्यम भावतो, तेमां ज ते स्थिरता करे. ६८.

परिवर्जुं छुं हुं ममत्व, निर्ममभावमां स्थित हुं रहुं;
अवलंबुं छुं मुज आत्मने, अवशेष सर्व हुं परिहरुं. ६९.

मुज ज्ञानमां आत्मा खरे, दर्शन-चरितमां आतमा,
पचखाणमां आत्मा ज, संवर-योगमां पण आतमा. १००.

जीव अकलो ज मरे, स्वयं जीव अकलो जन्मे अरे !

जीव अकलनुं नीपजे मरण, जीव अकलो सिद्धि लहे. १०१.

मारो सुशाश्वत अक दर्शनज्ञानलक्षण जीव छे;

बाकी बधा संयोगलक्षण भाव मुजथी बाह्य छे. १०२.

जे कांई पण दुश्चरित मुज ते सर्व हुं त्रिविधे तजुं;

करुं छुं निराकार ज समस्त चरित्र जे त्रयविधनुं. १०३.

सौ भूतमां समता मने, को साथ वेर मने नहीं;

आशा खरेखर छोडीने प्राप्ति करुं छुं समाधिनी. १०४.

अकषाय, उद्यमी, दान्त छे, संसारथी भयभीत छे,

शूरवीर छे, ते जीवने पचखाण सुखमय होय छे. १०५.

जीव-कर्म केरा भेदनो अभ्यास जे नित्ये करे,

ते संयमी पचखाण-धारणमां अवश्य समर्थ छे. १०६.



७. परम-आलोचना अधिकार

ते श्रमणने आलोचना, जे श्रमण ध्यावे आत्मने,

नोकर्मकर्म-विभावगुणपर्यायथी व्यतिरिक्तने. १०७.

आलोचनानुं रूप चउविध वर्णव्युं छे शास्त्रमां,

—आलोचना, आलुंछना, अविकृतिकरण ने शुद्धता. १०८.

समभावमां परिणाम स्थापी देखतो जे आत्मने,

ते जीव छे आलोचना—जिनवरवृषभ-उपदेश छे. १०९.

- छे कर्मतरुमूलछेदनुं सामर्थ्यं जे परिणाममां,
स्वाधीन ते समभाव-निजपरिणाम आलुंछन कह्या. ११०.
- अविकृतिकरण तेने कह्युं जे भावतां माध्यस्थने,
भावे विमळगुणधाम कर्मविभक्त आतमरामने. १११.
- त्रण लोक तेम अलोकना द्रष्टा कहे छे भव्यने,
—मदमानमायालोभवर्जित भाव भावविशुद्धि छे. ११२.



८. शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार

- व्रत, समिति, संयम, शील, इन्द्रियरोधरूप छे भाव जे
ते भाव प्रायश्चित्त छे, जे अनवरत कर्तव्य छे. ११३.
- क्रोधादि निज भावो तणा क्षय आदिनी जे भावना
ने आत्मगुणनी चित्तना निश्चयथी प्रायश्चित्तमां. ११४.
- जीते क्षमाथी क्रोधने, निज मर्दवेथी मानने,
आर्जव थकी माया खरे, संतोष द्वारा लोभने. ११५.
- उत्कृष्ट निज अवबोधने वा ज्ञानने वा चित्तने
धारण करे छे नित्य, प्रायश्चित्त छे ते साधुने. ११६.
- बहु कथन शुं करवुं ? अरे ! सौ जाण प्रायश्चित्त तुं,
नानाकरमक्षयहेतु उत्तम तपचरण ऋषिराजनुं. ११७.
- रे ! भव अनंतानंतथी अर्जित शुभाशुभ कर्म जे
ते नाश पामे तप थकी; तप तेथी प्रायश्चित्त छे. ११८.

आत्मस्वरूप अवलंबनारा भावथी सौ भावने
त्यागी शके छे जीव, तेथी ध्यान ते सर्वस्व छे. ११६.

छोडी शुभाशुभ वचनने, रागादिभाव निवारिने,
जे जीव ध्यावे आत्मने, तेने नियमथी नियम छे. १२०.

कायादि परद्रव्यो विषे स्थिरभाव छोडी आत्मने
ध्यावे विकल्पविमुक्त कायोत्सर्ग छे ते जीवने. १२१.



६. परम-समाधि अधिकार

वचनोच्चरणकिरिया तजी, वीतराग निज परिणामथी
ध्यावे निजात्मा जेह, परम समाधि तेने जाणवी. १२२.

संयम, नियम ने तप थकी, वळी धर्म-शुक्लध्यानथी,
ध्यावे निजात्मा जेह, परम समाधि तेने जाणवी. १२३.

वनवास वा तनक्लेशरूप उपवास विधविध शुं करे ?
रे मौन वा पठनादि शुं करे साम्यविरहित श्रमणने ? १२४.

सावधविरत, त्रिगुप्त छे, इन्द्रियसमूह निरुद्ध छे,
स्थायी समाधिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२५.

स्थावर अने त्रस सर्व भूतसमूहमां समभाव छे,
स्थायी समाधिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२६.

संयम, नियम ने तप विषे आत्मा समीप छे जेहने,
स्थायी समाधिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२७.

- नहि राग अथवा द्वेषरूप विकार जन्मे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२८.
- जे नित्य वर्जे आर्त तेम ज रौद्र बन्ने ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२९.
- जे नित्य वर्जे पुण्य तेम ज पाप बन्ने भावने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३०.
- जे नित्य वर्जे हास्यने, रति अरति तेम ज शोकने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३१.
- जे नित्य वर्जे भय जुगुप्सा, वर्जतो सौ वेदने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३२.
- जे नित्य ध्यावे धर्म तेम ज शुक्ल उत्तम ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३३.



१०. परम-भक्ति अधिकार

- श्रावक श्रमण सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्रनी भक्ति करे,
निर्वाणनी छे भक्ति तेने अम जिनदेवो कहे. १३४.
- वळी मोक्षगत पुरुषो तणो गुणभेद जाणी तेमनी
जे परम भक्ति करे, कही शिवभक्ति त्यां व्यवहारथी. १३५.
- शिवपंथ स्थापी आत्मने निर्वाणनी भक्ति करे,
ते कारणे असहायगुण निज आत्मने आत्मा वरे. १३६.

- रागादिना परिहारमां जे साधु जोडे आत्मने,
छे योगभक्ति तेहने; कई रीत संभव अन्यने ? १३७.
- सघळा विकल्प अभावमां जे साधु जोडे आत्मने,
छे योगभक्ति तेहने; कई रीत संभव अन्यने ? १३८.
- विपरीत आग्रह छोडीने, जैनाभिहित तत्त्वो विषे
जे जीव जोडे आत्मने, निज भाव तेनो योग छे. १३९.
- वृषभादि जिनवर अे रीते करी श्रेष्ठ भक्ति योगनी,
शिवसौख्य पास्या; तेथी कर तुं भक्ति उत्तम योगनी. १४०.



११. निश्चय-परमावश्यक अधिकार

- नथी अन्यवश जे जीव, आवश्यक कर्म छे तेहने;
आ कर्मनाशनयोगने निर्वाणमार्ग कहेल छे. १४१.
- वश जे नहीं ते 'अवश', 'आवश्यक' अवशनुं कर्म छे;
ते युक्ति अगर उपाय छे, अशरीर तेथी थाय छे. १४२.
- वर्ते अशुभ परिणाममां, ते श्रमण छे वश अन्यने;
ते कारणे आवश्यकतात्मक कर्म छे नहि तेहने. १४३.
- संयत रही शुभमां चरे, ते श्रमण छे वश अन्यने;
ते कारणे आवश्यकतात्मक कर्म छे नहि तेहने. १४४.
- जे चित्त जोडे द्रव्य-गुण-पर्यायनी चिंता विषे,
तेनेय मोहविहीन श्रमणो अन्यवश भाखे अरे ! १४५.

परभाव छोडी, आत्मने ध्यावे विशुद्धस्वभावने,
छे आत्मवश ते साधु, आवश्यक करम छे तेहने. १४६.

आवश्यकार्थे तुं निजाल्मस्वभावमां स्थिरता करे;
तेनाथी सामायिक तणो गुण पूर्ण थाये जीवने. १४७.

आवश्यके विरहित श्रमण चारित्र्यी प्रभ्रष्ट छे;
तेथी यथोक्त प्रकार आवश्यक करम कर्तव्य छे. १४८.

आवश्यके संयुक्त योगी अंतरात्मा जाणवो;
आवश्यके विरहित श्रमण बहिरंग आत्मा जाणवो. १४९.

जे बाह्य-अंतर जल्पमां वर्ते, अरे ! बहिरात्म छे;
जल्पो विषे वर्ते नहीं, ते अंतरात्मा जीव छे. १५०.

वळी धर्मशुक्लध्यानपरिणत अंतरात्मा जाणजे;
ने ध्यानविरहित श्रमणने बहिरंग आत्मा जाणजे. १५१.

प्रतिक्रमण आदि क्रिया—चरण निश्चय तणुं—करतो रहे,
तेथी श्रमण ते वीतराग चरित्रमां आरूढ छे. १५२.

रे ! वचनमय प्रतिक्रमण, नियमो, वचनमय पचखाण जे,
जे वचनमय आलोचना, सघळुंय ते स्वाध्याय छे. १५३.

करी जो शके, प्रतिक्रमण आदि ध्यानमय करजे अहो !
कर्तव्य छे श्रद्धा ज, शक्तिविहीन जो तुं होय तो. १५४.

प्रतिक्रमण-आदि स्पष्ट परखी जिन-परमसूत्रो विषे,
मुनिअे निरंतर मौनव्रत सह साधवुं निज कार्यने. १५५.

- छे जीव विधविध, कर्म विधविध, लब्धि छे विधविध अरे !
 ते कारणे निजपरसमय सह वाद परिहर्तव्य छे. १५६.
 निधि पामीने जन कोई निज वतने रही फळ भोगवे,
 त्यम ज्ञानी परजनसंग छोडी ज्ञाननिधिने भोगवे. १५७.
 सर्वे पुराण जनो अहो अे रीत आवश्यक करी,
 अप्रमत्त आदि स्थानने पामी थया प्रभु केवळी. १५८.



१२. शुद्धोपयोग अधिकार

- जाणे अने देखे बधुं प्रभु केवळी व्यवहारथी;
 जाणे अने देखे स्वने प्रभु केवळी निश्चय थकी. १५९.
 जे रीत ताप-प्रकाश वर्ते युगपदे आदित्यने,
 ते रीत दर्शन-ज्ञान युगपद होय केवळज्ञानीने. १६०.
 दर्शन प्रकाशक आत्मनुं, परनुं प्रकाशक ज्ञान छे,
 निजपरप्रकाशक जीव,—अे तुज मान्यता अयथार्थ छे. १६१.
 परने ज जाणे ज्ञान तो दृग ज्ञानथी भिन्न ज ठरे,
 दर्शन नथी परद्रव्यगत—अे मान्यता तुज होईने. १६२.
 परने ज जाणे जीव तो दृग जीवथी भिन्न ज ठरे,
 दर्शन नथी परद्रव्यगत—अे मान्यता तुज होईने. १६३.
 व्यवहारथी छे परप्रकाशक ज्ञान, तेथी दृष्टि छे;
 व्यवहारथी छे परप्रकाशक जीव, तेथी दृष्टि छे. १६४.

निश्चयनये छे निजप्रकाशक ज्ञान, तेथी दृष्टि छे;
निश्चयनये छे निजप्रकाशक जीव, तेथी दृष्टि छे. १६५.

प्रभु केवळी देखे निजात्माने, न लोकालोकने,
—जो कोई भाखे अम तो तेमां कहो शो दोष छे ? १६६.

मूर्तिक-अमूर्तिक चेतनाचेतन स्वपर सौ द्रव्यने
जे देखतो तेने अतीन्द्रिय ज्ञान छे, प्रत्यक्ष छे. १६७.

विधविध गुणो ने पर्ययो संयुक्त द्रव्य समस्तने
देखे न जे सम्यक् प्रकार, परोक्ष दृष्टि तेहने. १६८.

प्रभु केवळी जाणे त्रिलोक-अलोकने, नहि आत्मने,
—जो कोई भाखे अम तो तेमां कहो शो दोष छे ? १६९.

छे ज्ञान जीवस्वरूप, तेथी जीव जाणे जीवने;
जीवने न जाणे ज्ञान तो अ जीवथी जुदुं ठरे ! १७०.

रे ! जीव छे ते ज्ञान छे, ने ज्ञान छे ते जीव छे;
ते कारणे निजपरप्रकाशक ज्ञान तेम ज दृष्टि छे. १७१.

जाणे अने देखे छतां इच्छा न केवळीजिनने;
ने तेथी 'केवळज्ञानी' तेम 'अबंध' भाख्या तेमने. १७२.

परिणामपूर्वक वचन जीवने बंधकारण थाय छे;
परिणाम विरहित वचन तेथी बंध थाय न ज्ञानीने. १७३.

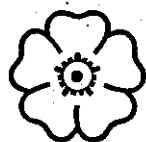
अभिलाषपूर्वक वचन जीवने बंधकारण थाय छे;
अभिलाष विरहित वचन तेथी बंध थाय न ज्ञानीने. १७४.

- अभिलाषपूर्व विहार, आसन, स्थान नहि जिनदेवने,
तेथी नथी त्यां बंध; बंधन मोहवश साक्षार्थने. १७५.
- आयुक्षये त्यां शेष सर्वे कर्मनो क्षय थाय छे;
पछी समयमात्रे शीघ्र ते लोकाग्र पहांची जाय छे. १७६.
- कर्माष्टवर्जित, परम, जन्मजरामरणहीन, शुद्ध छे,
ज्ञानादि चार स्वभाव छे, अक्षय, अनाश, अछेद्य छे. १७७.
- अनुपम, अतीन्द्रिय, पुण्यपापविमुक्त, अव्याबाध छे,
पुनरागमन विरहित, निरालंबन, सुनिश्चळ, नित्य छे. १७८.
- ज्यां दुःख नहि, सुख ज्यां नहीं, पीडा नहीं, बाधा नहीं,
ज्यां मरण नहि, ज्यां जन्म छें नहि, त्यां ज मुक्ति जाणवी. १७९.
- नहि इन्द्रियो, उपसर्ग नहि, नहि मोह, विस्मय ज्यां नहीं,
निद्रा नहीं, न क्षुधा, तृषा नहि, त्यां ज मुक्ति जाणवी. १८०.
- ज्यां कर्म नहि, नोकर्म, चिंता, आर्तरौद्रोभय नहीं,
ज्यां धर्मशुक्लध्यान छे नहि, त्यां ज मुक्ति जाणवी. १८१.
- दृग-ज्ञान केवळ, सौख्य केवळ, वीर्य केवळ होय छे,
अस्तित्व, मूर्तिविहीनता, सप्रदेशमयता होय छे. १८२.
- निर्वाण छे ते सिद्ध छे ने सिद्ध ते निर्वाण छे;
सौ कर्मथी प्रविमुक्त आत्मा लोक-अग्रे जाय छे. १८३.
- धर्मास्ति ज्यां लगी, त्यां लगी जीव-पुद्गलोलुं गमन छे;
धर्मास्तिकाय-अभावमां आगळ गमन नहि थाय छे. १८४.

प्रवचन-सुभक्ति थकी कह्यां में नियम ने तत्फळ अहो !
यदि पूर्व-अपर विरोध हो, समयज्ञ तेह सुधारजो. १८५.

पण कोई सुंदर मार्गनी निंदा करे ईर्षा वडे,
तेनां सुणी वचनो करो न अभक्ति जिनमारग विषे. १८६.

निजभावना अर्थे रच्युं में नियमसार-सुशास्त्रने,
सौ दोष पूर्वापर रहित उपदेश जिननो जाणीने. १८७.



ॐ

श्री

अष्टपाहुड

(पद्यानुवाद)

१. दर्शनप्राभृत

(हसिगीत)

प्रारंभमां करीने नमन ^१जिनवरवृषभ महावीरने,
संक्षेपथी हुं यथाक्रमे भाखीश दर्शनमार्गने. १.

रे ! धर्म ^२दर्शनमूल, उपदेश्यो जिनोअे शिष्यने;
ते धर्म निज कर्णे सुणी दर्शनरहित नहि वंघ छे. २.

^३दृग्भ्रष्ट जीवो भ्रष्ट छे, दृग्भ्रष्टनो नहि मोक्ष छे;
चारित्रभ्रष्ट मुकाय छे, दृग्भ्रष्ट नहि मुक्ति लहे. ३.

सम्यक्त्वरत्नविहीन जाणे शास्त्र बहुविधने भले,
पण शून्य छे आराधनाथी तेथी त्यां ने त्यां भमे. ४.

१. जिनवरवृषभ = तीर्थकर.

२. दर्शनमूल = सम्यग्दर्शन जेनुं मूल छे अेवो.

३. दृग्भ्रष्ट = सम्यग्दर्शनरहित.

- सम्यक्त्व विण जीवो भले तप उग्र ^१सुष्ठु आचरे,
पण लक्ष कोटि वर्षमांये बोधिलाभ नहीं लहे. ५.
- सम्यक्त्व-दर्शन-ज्ञान-बळ-वीर्ये अहो ! वधता रहे
कलिमलरहित जे जीव, ते ^२वरज्ञानने अचिरे लहे. ६.
- सम्यक्त्वनीरप्रवाह जेना हृदयमां नित्ये वहे,
तस बद्धकर्मी ^३वालुका-आवरण सम क्षयने लहे. ७.
- दृग्भ्रष्ट, ज्ञाने भ्रष्ट ने चारित्रमां छे भ्रष्ट जे,
ते भ्रष्टथी पण भ्रष्ट छे ने नाश अन्य तणो करे. ८.
- जे धर्मशील, संयम-नियम-तप-योग-गुण धरनार छे,
तेनाय भाखी दोष, भ्रष्ट मनुष्य दे भ्रष्टत्वने. ९.
- ज्यम मूळनाशे वृक्षना परिवारनी वृद्धि नहीं,
जिनदर्शनात्मक मूळ होय विनष्ट तो सिद्धि नहीं. १०.
- ज्यम मूळ द्वारा स्कंध ने शाखादि बहुगुण थाय छे,
त्यम मोक्षपथनुं मूळ जिनदर्शन कहुं जिनशासने. ११.
- दृग्भ्रष्ट जे निज पाय पाडे दृष्टिना धरनारने,
ते थाय मूंगा, ^४खंडभाषी, बोधि दुर्लभ तेमने. १२.

१. सुष्ठु = सारी रीते.

२. वरज्ञान = उत्कृष्ट ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान.

३. वालुका-आवरण = वेळुनुं आवरण; रेतीनी पाळ.

४. खंडभाषी = अस्पष्ट भाषावाळा; तूटक-भाषावाळा.

- वळी जाणीने पण तेमने ^१गारव-शरम-भयथी नमे,
तेनेय बोधि-अभाव छे पापानुमोदन होईने. १३.
- ज्यां ज्ञान ने संयम ^२त्रियोगे, उभयपरिग्रहत्याग छे,
जे ^३शुद्ध स्थितिभोजन करे, दर्शन तदाश्रित होय छे. १४.
- सम्यक्त्वथी सुज्ञान, जेथी सर्व भाव जणाय छे,
ने सौ पदार्थो जाणतां अश्रेय-श्रेय जणाय छे. १५.
- अश्रेय-श्रेयसुजाण छोडी कुशील धारे शीलने,
ने शीलफळथी होय ^४अभ्युदय, पछी मुक्ति लहे. १६.
- जिनवचनरूप दवा ^५विषयसुखरेचिका, अमृतमयी,
छे व्याधि-मरण-जरादिहरणी, सर्व दुःखविनाशिनी. १७.
- छे अेक ^६जिननुं रूप, बीजुं श्रावकोत्तम-लिंग छे,
त्रीजुं कहुं आर्यादिनुं, चोथुं न कोई कहेल छे. १८.
- पंचास्तिकाय, छे द्रव्य ने नव अर्थ, तत्त्वो सात छे,
श्रद्धे स्वरूपो तेमनां, जाणो सुदृष्टि तेहने. १९.

१. गारव = (रस-ऋद्धि-शाता संबंधी) गर्व; मस्ताई.

२. त्रियोग = (मनवचनकत्रयाना) त्रण योग.

३. शुद्ध स्थितिभोजन = त्रण करणथी शुद्ध (कृत-कारित-अनुमोदन विनानुं) अेवुं ऊभां ऊभां भोजन.

४. अभ्युदय = तीर्थकरत्वादिनी प्राप्ति.

५. विषयसुखरेचिका = विषयसुखनुं विरेचन करनारी.

६. जिननुं रूप = जिनना रूप समान मुनिनुं यथाजात रूप.

- जीवादिना श्रद्धानने सम्यक्त्व भाख्युं छे जिने
व्यवहारथी, पण निश्चये आतमा ज निज सम्यक्त्व छे. २०.
- अे जिनकथित दर्शनरतनने भावथी धारो तमे,
गुणरत्नत्रयमां सार ने जे ^१प्रथम शिवसोपान छे. २१.
- थई जे शके करवुं अने नव थइ शके ते श्रद्धवुं;
सम्यक्त्व श्रद्धावंतने सर्वज्ञ जिनदेवे कह्युं. २२.
- दृग, ज्ञान ने चारित्र, तप, विनये सदाय ^२सुनिष्ठ जे,
ते जीव वंदनयोग्य छे—^३गुणधर तणा ^४गुणवादी जे. २३.
- ज्यां रूप देखी ^५साहजिक, आदर नहीं ^६मत्सर वडे,
संयम तणो धारक भले ते होय पण कृदृष्टि छे. २४.
- जे ^७अमरवंदित शीलयुत मुनिओ तणुं रूप जोईने
मिथ्याभिमान करे अरे ! ते जीव दृष्टिविहीन छे. २५.
- वंदो न अणसंयत, भले हो नग्न पण नहि वंघ ते;
बंने समानपणुं धरे, अेक्के न संयमवंत छे. २६.

१. प्रथम शिवसोपान = मोक्षनुं पहेलुं पगथियुं.

२. सुनिष्ठ = सुस्थित.

३. गुणधर = गुणना धरनारा.

४. गुणवादी = गुणोने प्रकाशनारा.

५. साहजिक = स्वाभाविक; नैसर्गिक; यथाजात.

६. मत्सर = ईर्ष्या; द्वेष; गुमान.

७. अमरवंदित = देवोथी वंदित.

- નહિ દેહ વંદ્ય, ન વંદ્ય કુલ, નહિ વંદ્ય જન જાતિ થકી;
ગુણહીન ક્યમ વંદાય ? તે સાધુ નથી, શ્રાવક નથી. ૨૭.
- સમ્યક્ત્વસંયુત શુદ્ધભાવે વંદું છું મુનિરાજને,
તસ બ્રહ્મચર્ય, સુશીલને, ગુણને તથા ^૧શિવગમનને. ૨૮.
- ચોસઠ ચમર સંયુક્ત ને ચોત્રીસ અતિશય યુક્ત જે,
બહુજીવહિતકર સતત, કર્મવિનાશકારણ-હેતુ છે. ૨૯.
- સંયમ થકી, વા જ્ઞાન-દર્શન-ચરણ-તપ છે ચાર જે
એ ચાર કેરા યોગથી, મુક્તિ કહી જિનશાસને. ૩૦.
- રે ! જ્ઞાન નરને સાર છે, સમ્યક્ત્વ નરને સાર છે;
સમ્યક્ત્વથી ચારિત્ર ને ચારિત્રથી મુક્તિ લહે. ૩૧.
- ^૨દૃગ-જ્ઞાનથી, સમ્યક્ત્વયુત ચારિત્રથી ને તપ થકી,
—એ ચારના યોગે જીવો સિદ્ધિ વરે, શંકા નથી. ૩૨.
- ^૩કલ્યાણશ્રેણી સાથ પામે જીવ સમક્તિ શુદ્ધને;
સુર-અસુર કેરા લોકમાં સમ્યક્ત્વરત્ન પુજાય છે. ૩૩.
- રે ! ગોત્ર ઉત્તમથી સહિત ^૪મનુજત્વને જીવ પામીને,
સંપ્રાપ્ત કરી સમ્યક્ત્વ, અક્ષય સૌખ્ય ને મુક્તિ લહે. ૩૪.

૧. શિવગમન = મોક્ષપ્રાપ્તિ.

૨. દૃગજ્ઞાન = દર્શન અને જ્ઞાન.

૩. કલ્યાણશ્રેણી = સુખોની પરંપરા; વિભૂતિની હારમાલ્લ.

૪. મનુજત્વ = મનુષ્યપણું.

चोत्रीस अतिशययुक्त, ^१अष्ट सहस्र लक्षणधरपणे
जिनचंद्र विहरे ज्यां लगी, ते ^२बिंब स्थावर उक्त छे. ३५.

^३द्वादश तपे संयुक्त, निज कर्मो खपावी विधिबळे,
^४व्युत्सर्गथी तनने तजी, पाम्या ^५अनुत्तम मोक्षने. ३६.



२. सूत्रप्राभृत

अर्हतभाषित-अर्थमय, गणधरसुविरचित सूत्र छे;
^६सूत्रार्थना ^७शोधन वडे साधे श्रमण परमार्थने. १.

सूत्रे ^८सुदर्शित जेह, ते ^९सूरिगणपरंपर मार्गथी
जाणी ^{१०}द्विधा, शिवपंथ वर्ते जीव जे ते भव्य छे. २.

^{११}सूत्रज्ञ जीव करे विनष्ट भवो तणा उत्पादने;
खोवाय सोय ^{१२}असूत्र, सोय असूत्र नहि खोवाय छे; ३.

१. अष्ट सहस्र = अेक हजार ने आठ.

२. बिंब = प्रतिमा. ३. द्वादश = बार.

४. व्युत्सर्गथी = (शरीर प्रत्ये) संपूर्ण उपेक्षापूर्वक.

५. अनुत्तम = सर्वोत्तम. ६. सूत्रार्थ = सूत्रोना अर्थ.

७. शोधन = शोधवुं - खोजवुं ते.

८. सुदर्शित = सारी रीते दर्शाववामां - कहेवामां आवेलुं.

९. सूरिगणपरंपर मार्ग = आचार्योनी परंपरामय मार्ग.

१०. द्विधा = (शब्दथी अने अर्थथी—अेम) वे प्रकारे.

११. सूत्रज्ञ = शास्त्रनो जाणनार. १२. असूत्र = दोरा विनानी.

- आत्माय तेम ^१ससूत्र नहि खोवाय, हो भवमां भले;
^२अदृष्ट पण ते स्वानुभवप्रत्यक्षथी भवने हणे. ४.
- जिनसूत्रमां भाखेल जीव-अजीव आदि पदार्थने
 हेयत्व-अणहेयत्व सह जाणे, सुदृष्टि तेह छे. ५.
- जिन-उक्त छे जे सूत्र ते व्यवहार ने परमार्थ छे;
 ते जाणी योगी सौख्यने पामे, ^३दहे मळपुंजने. ६.
- ^४सूत्रार्थपदथी भ्रष्ट छे ते जीव मिथ्यादृष्टि छे;
^५करपात्रभोजन रमतमांय न योग्य होय ^६सचेलने. ७.
- ^७हरितुल्य हो पण स्वर्ग पामे, कोटि कोटि भवे भमे,
 पण सिद्धि नव पामे, रहे संसारस्थित—आगम कहे. ८.
- स्वच्छंद वर्ते तेह पामे पापने मिथ्यात्वने,
 गुरुभारधर, उत्कृष्ट सिंहचरित्र, बहुतपकर भले. ९.
- ^८निश्चेल-करपात्रत्व परमजिनेन्द्रथी उपदिष्ट छे;
 ते अेक मुक्ति मार्ग छे ने शेष सर्व अमार्ग छे. १०.

१. ससूत्र = शास्त्रनो जाणनार.

२. अदृष्ट पण = देखातो नहि होवा छतां (अर्थात् इन्द्रियोथी नहि जणातो होवा छतां). ३. दहे = बाळे.

४. सूत्रार्थपद = सूत्रोनां अर्थो अने पदो.

५. करपात्रभोजन = हाथरूपी पात्रमां भोजन करवुं ते.

६. सचेल = वस्त्रसहित. ७. हरि = नारायण.

८. निश्चेल-करपात्रत्व = वस्त्ररहितपणुं अने हाथरूपी पात्रमां भोजन करवापणुं.

- जे जीव संयमयुक्त ने आरंभपरिग्रहविरत छे,
ते देव-दानव-मानवोना लोकत्रयमां वंघ छे. ११.
- बावीश परिषहने सहे छे, ^१शक्तिशतसंयुक्त जे,
ते कर्मक्षय ने निर्जरामां निपुण मुनिओ वंघ छे. १२.
- ^२अवशेष लिंगी जेह सम्यक् ज्ञान-दर्शनयुक्त छे
ने वस्त्र धारे जेह, ते छे योग्य इच्छाकारने. १३.
- ^३सूत्रस्थ सम्यग्दृष्टियुत जे जीव छोडे कर्मने,
^४'इच्छामि'योग्य ^५पदस्थ ते परलोकगत सुखने लहे. १४.
- पण आत्मने इच्छया विना धर्मो अशेष करे भले,
तोपण लहे नहि सिद्धिने, भवमां भमे—आगम कहे. १५.
- आ कारणे ते आत्मनी त्रिविधे तमे श्रद्धा करो,
ते आत्मने जाणो प्रयत्ने, मुक्तिने जेथी वरो. १६.
- रे ! होय नहि ^६बालाग्रनी अणीमात्र परिग्रह साधुने;
करपात्रमां परदत्त भोजन अेक स्थान विषे करे. १७.

१. शक्तिशत = सेंकडो शक्तिओ.

२. अवशेष = बाकीना (अर्थात् मुनि सिवायना).

३. सूत्रस्थ = शास्त्रोनी जाणनार अने यथाशक्ति तदनुसार वर्तनार.

४. 'इच्छामि'योग्य = इच्छाकारने योग्य.

५. पदस्थ = प्रतिमाधारी.

६. बालाग्र = वाळनी टोच.

- जन्म्या प्रमाणे रूप, ^१तलतुषमात्र करमां नव ग्रहे,
थोडुंघणुं पण जो ग्रहे तो प्राप्त थाय निगोदने. १८.
- रे! होय बहु वा अल्प परिग्रह साधुने जेना मते,
ते निंद्य छे; जिनवचनमां मुनि निष्परिग्रह होय छे. १९.
- त्रण गुप्ति, पंच महाव्रते जे युक्त, संयत तेह छे;
निर्ग्रथ मुक्तिमार्ग छे ते; ते खरेखर वंद्य छे. २०.
- बीजु कह्युं छे लिंग उत्तम श्रावकोनुं शासने;
ते ^२वाक्समिति वा मौनयुक्त सपात्र भिक्षाटन करे. २१.
- छे लिंग अेक स्त्रीओ तणुं, ^३अेकाशनी ते होय छे;
आर्याय अेक धरे ^४वसन, वस्त्रावृता भोजन करे. २२.
- नहि वस्त्रधर सिद्धि लहे, ते होय तीर्थकर भले;
बस नग्न मुक्तिमार्ग छे, बाकी बधा उन्मार्ग छे. २३.
- स्त्रीने स्तनोनी पास, कक्षे, योनिमां, नाभि विषे,
बहु सूक्ष्म जीव कहेल छे; क्यम होय दीक्षा तेमने ? २४.
- जो होय दर्शनशुद्ध तो तेनेय ^५मार्गयुता कही;
छो चरण घोर चरे छतां स्त्रीने नथी दीक्षा कही. २५.

१. तलतुषमात्र = तलना फोतरा जेटलुं पण.

२. वाक्समिति = वचनसमिति.

३. अेकाशनी = अेक वखत भोजन करनार.

४. वसन = वस्त्र.

५. मार्गयुता = मार्गधी संयुक्त.

मनशुद्धि पूरी न नारीने, परिणाम शिथिल स्वभावथी,
वळी होय मासिक धर्म, स्त्रीने ध्यान नहि निःशंकथी. २६.

१पटशुद्धिमात्र समुद्रजलवत् ग्राह्य पण अल्प ज ग्रहे,
इच्छा निवर्ती जेमने, दुख सौ निवर्त्या तेमने. २७.



३. चारित्रप्राभृत

सर्वज्ञ छे, परमेष्ठी छे, निर्मोह ने वीतराग छे,
ते त्रिजगवंदित, भव्यपूजित अर्हतोने वंदीने; १.

भाखीश हुं चारित्रप्राभृत मोक्षने आराधवा,
जे हेतु छे सुज्ञान-दृग-चारित्र केरी शुद्धिमां. २.

जे जाणतुं ते ज्ञान, देखे तेह दर्शन उक्त छे;
ने ज्ञान-दर्शनना समायोगे ३सुचारित होय छे. ३.

आ भाव त्रण आत्मा तणा अविनाश तेम ३अमेय छे;
अे भावत्रयनी शुद्धि अर्थे द्विविध चरण जिनोक्त छे. ४.

सम्यक्त्वचरणं छे प्रथम, जिनज्ञानदर्शनशुद्ध जे,
बीजुं चरित संयमचरण, जिनज्ञानभाषित तेय छे. ५.

१. पटशुद्धिमात्र = वस्त्र धोवा पूरतुं थोडुं ज.

२. सुचारित्र = सम्यक्चारित्र.

३. अमेय = अमाप.

ઈમ જાણીને છોડો ત્રિવિધ યોગે સકલ શંકાદિને,
—મિથ્યાત્વમય દોષો તથા સમ્યક્ત્વમલ જિન-ઉક્તને. ૬.

નિ:શંકતા, નિ:કાંક્ષ, નિર્વિચિકિત્સ, અવિમૂઢત્વ ને
ઉપગૂહન, થિતિ, વાત્સલ્યભાવ, પ્રભાવના—ગુણ અષ્ટ છે. ૭.

તે ^૧અષ્ટગુણસુવિશુદ્ધ જિનસમ્યક્ત્વને—^૨શિવહેતુને
આચરવું જ્ઞાન સમેત, તે સમ્યક્ત્વચરણ ચરિત્ર છે. ૮.

સમ્યક્ત્વચરણવિશુદ્ધ ને નિષ્પન્નસંયમચરણ જો,
નિર્વાણને અચિરે વરે અવિમૂઢદૃષ્ટિ જ્ઞાનીઓ. ૯.

સમ્યક્ત્વચરણવિહીન છો સંયમચરણ જન આચરે,
તોપણ લહે નહિ મુક્તિને ^૩અજ્ઞાનજ્ઞાનવિમૂઢ એ. ૧૦.

વાત્સલ્ય-વિનય-થકી, સુદાને દક્ષ અનુકંપા થકી,
વઢી ^૪માર્ગગુણસ્તવના થકી, ઉપગૂહન ને સ્થિતિકરણથી; ૧૧.

—આ લક્ષણોથી તેમ ^૫આર્જવભાવથી ^૬લક્ષાય છે,
વળમોહ જિનસમ્યક્ત્વને આરાધનારો જીવ જે. ૧૨.

અજ્ઞાનમોહપથે કુમતમાં ભાવના, ઉત્સાહ ને
શ્રદ્ધા, સ્તવન, સેવા કરે જે, તે તજે સમ્યક્ત્વને. ૧૩.

૧. અષ્ટગુણસુવિશુદ્ધ = આઠ ગુણોથી નિર્મલ.

૨. શિવહેતુ = મોક્ષનું કારણ.

૩. અજ્ઞાનજ્ઞાનવિમૂઢ = અજ્ઞાનતત્ત્વ અને જ્ઞાનતત્ત્વનો ભેદ નહિ જાણનાર.

૪. માર્ગગુણસ્તવના = નિર્ગ્રંથ માર્ગના ગુણની પ્રશંસા.

૫. આર્જવભાવ = સરલ પગ્ગિામ.

૬. લક્ષાય = ઓલ્લાયાય.

- सदृशने उत्साह, श्रद्धा, भावना, सेवा अने
स्तुति ज्ञानमार्गथी जे करे, छोडे न जिनसम्यक्त्वने. १४.
- अज्ञान ने मिथ्यात्व तज, लही ज्ञान, समकित शुद्धने;
वळी मोह तज ^१सारंभ तुं, लहीने अहिंसाधर्मने. १५.
- निःसंग लही दीक्षा, प्रवर्त सुसंयमे, सत्तप विषे;
निर्मोह वीतरागत्व होतां ध्यान निर्मळ होय छे. १६.
- जे वर्तता ^२अज्ञानमोहमले मलिन मिथ्यामते,
ते मूढजीव मिथ्यात्व ने मतिदोषथी बंधाय छे. १७.
- देखे दरशथी, ज्ञानथी जाणे दरव-पर्यायने,
सम्यक्त्वथी श्रद्धा करे, चारित्रदोषो परिहरे. १८.
- रे ! होय छे भावो त्रणे आ, मोहविरहित जीवने;
निज आत्मगुण आराधतो ते कर्मने ^३अचिरे तजे. १९.
- संसारसीमित निर्जरा अणसंख्य-संख्यगुणी करे,
सम्यक्त्व आचरनार धीरा दुःखना क्षयने करे. २०.
- सागार अण-आगार अेम द्विभेद संयमचरण छे;
सागार छे सग्रंथ, अण-आगार परिग्रहरहित छे. २१.
- दर्शन, व्रतं, सामायिकं, प्रोषध, सचित, ^४निशिभुक्ति ने
वळी ब्रह्म ने आरंभ आदिक देशविरतिस्थान छे. २२.

१. सारंभ = आरंभयुक्त.

२. अज्ञानमोहमले मलिन = अज्ञान अने मोहना दोषो वडे मलिन.

३. अचिरे = अल्प कालमां.

४. निशिभुक्ति = रात्रिभोजनत्याग.

અણુવ્રત કહ્યાં છે પાંચ ને ત્રણ ગુણવ્રતો નિર્દિષ્ટ છે,
શિક્ષાવ્રતો છે ચાર;—એ સંયમચરણ સાગાર છે. ૨૩.

ત્યાં સ્થૂલ ત્રસહિંસા-અસત્ય-અદત્તના, પરનારીના
પરિહારને, આરંભપરિગ્રહમાનને અણુવ્રત કહ્યાં. ૨૪.

દિશવિદિશગતિ-પરિમાણ હોય, અનર્થદંડ પરિત્યજે,
ભોગોપભોગ તણું કરે પરિમાણ,—ગુણવ્રત ત્રણ્ય છે. ૨૫.

સામાયિકં, વ્રત પ્રોષધં, અતિથિ તળી પૂજા અને
અંતે કરે સલ્લેખના—શિક્ષાવ્રતો એ ચાર છે. ૨૬.

શ્રાવકધરમરૂપ દેશસંયમચરણ ભાખ્યું એ રીતે;
યતિધર્મ-આત્મક પૂર્ણસંયમચરણ શુદ્ધ કહું હવે. ૨૭.

પંચેન્દ્રિસંવર, પાંચ વ્રત પચ્વીશક્રિયાસંબદ્ધ જે,
વઢી પાંચ સમિતિ, ત્રિગુપ્તિ—અણ-આગાર સંયમચરણ છે.

સુમનોજ્ઞ ને અમનોજ્ઞ જીવ-અજીવદ્રવ્યોને વિષે
કરવા ન ૧રાગવિરોધ તે પંચેન્દ્રિસંવર ઉક્ત છે. ૨૮.

હિંસાવિરામ, અસત્ય તેમ અદત્તથી વિરમણ અને
અબ્રહ્મવિરમણ, સંગવિરમણ—છે મહાવ્રત પાંચ એ. ૩૦.

મોટા પુરુષ સાધે, પૂરવ મોટા જનોએ આચર્યા,
સ્વયમેવ વઢી મોટાં જ છે, તેથી મહાવ્રત તે ઠર્યા. ૩૧.

૧. રાગવિરોધ = રાગદ્વેષ.

- मन-वचनगुप्ति, गमनसमिति, सुदाननिक्षेपण अने
अवलोकनीने भोजन—अहिंसाभावना अे पांच छे. ३२.
- जे क्रोध, भय ने हास्य तेम ज लोभ-मोह—कुभाव छे,
तेना ^१विपर्ययभाव ते छे भावना बीजा व्रते. ३३.
- सूना अगर तो त्यक्त स्थाने वास, ^२पर-उपरोध ना,
आहार अेषणशुद्धियुत, साधर्मी सह विखवाद ना. ३४.
- महिलानिरीक्षण-पूर्वरतिस्मृति-निकटवास, ^३त्रियाकथा,
पौष्टिक रसोथी विरति—ते व्रत ^४तुर्यनी छे भावना. ३५.
- मनहर-अमनहर स्पर्श-रस-रूप-गंध तेम ज शब्दमां
करवा न रागविरोध, व्रत पंचम तणी अे भावना. ३६.
- इर्या, सुभाषा, अेषणा, आदान ने निक्षेप—अे,
संयम तणी शुद्धि निमित्ते समिति पांच जिनो कहे. ३७.
- रे ! ^५भव्यजनबोधार्थ जिनमार्गे कह्युं जिन जे रीते,
ते रीत जाणो ज्ञान ने ^६ज्ञानात्म आत्माने तमे. ३८.
- जे जाणतो जीव-अजीवना सुविभागने, सदज्ञानी ते
रागादिविरहित थाय छे—जिनशासने शिवमार्ग जे. ३९.

१. विपर्ययभाव = विपरीत भाव.

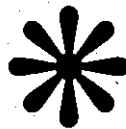
२. पर-उपरोध ना = बीजाने नडतर थाय अेम न रहेवुं ते.

३. त्रियाकथा = स्त्रीकथा. ४. तुर्य = चतुर्थ.

५. भव्यजनबोधार्थ = भव्यजनोने बोधवा माटे.

६. ज्ञानात्म = ज्ञानस्वरूप.

- दृग, ज्ञान ने चरित्र—त्रण जाणो परम श्रद्धा वडे,
जे जाणीने योगीजनो निर्वाणने अचिरे वरे. ४०.
- जे ज्ञानजळ पीने लहे सुविशुद्ध निर्मळ परिणति,
शिवधामवासी सिद्ध थाय—त्रिलोकना चूडामणि. ४१.
- जे ज्ञानगुणथी रहित, ते पामे न लाभ सु-इष्टने;
गुणदोष जाणी अे रीते, सद्ज्ञानने जाणो तमे. ४२.
- ज्ञानी चरित्रारूढ थई निज आत्ममां पर नव चहे,
अचिरे लहे शिवसौख्य अनुपम अेम जाणो निश्चये. ४३.
- वीतरागदेवे ज्ञानथी सम्यक्त्व-संयम-आश्रये
जे चरण भाख्युं, ते कह्युं संक्षेपथी अहीं आ रीते. ४४.
- भावो विमळ भावे चरणप्राभृत सुविरचित स्पष्ट जे,
छोडी चतुर्गति शीघ्र पामो मोक्ष शाश्वतने तमे. ४५.



४. बोधप्राभृत

- शास्त्रार्थ बहु जाणे, ^१सुदृगसंयमविमळ तप आचरे,
^२वर्जितकषाय, विशुद्ध छे, ते ^३सूरिगणने वंदीने; १.
- षट्कायसुखकर कथन करुं संक्षेपथी, सुणजो तमे,
जे सर्वजनबोधार्थ जिनमार्गे कहुं छे जिनवरे. २.
- जे आयतन ने चैत्यगृह, प्रतिमा तथा दर्शन अने
वीतराग जिननुं बिंब, जिनमुद्रा, स्वहेतुक ज्ञान जे, ३.
- ^४अर्हंतदेशित देव, तेम ज तीर्थ, वळी अर्हंत ने
^५गुणशुद्ध प्रव्रज्या यथाक्रमशः अहीं ज्ञातव्य छे. ४.
- ^६आयत्त छे मन-वचन-काया इन्द्रिविषयो जेहने,
ते संयमीनुं रूप भाख्युं आयतन जिनशासने. ५.
- आयत्त जस मद-क्रोध-लोभ विमोह-राग-विरोध छे,
ऋषिवर्य पंचमहाव्रती ते आयतन निर्दिष्ट छे. ६.
- सुविशुद्धध्यानी, ज्ञानयुत, जेने सुसिद्ध ^७सदर्थ छे,
मुनिवरवृषभ ते मळरहित सिद्धायतन ^८विदितार्थ छे. ७.

१. सुदृगसंयमविमळ तप = सम्यग्दर्शन ने संयमथी शुद्ध अेवुं तप.

२. वर्जितकषाय = कषायरहित. ३. सूरिगण = आचार्योनी समूह.

४. अर्हंतदेशित = अर्हंतभगवाने कहेल.

५. गुणशुद्ध प्रव्रज्या = गुणथी शुद्ध अेवी दीक्षा.

६. आयत्त = आधीन; वशीभूत. ७. सदर्थ = सत् अर्थ.

८. विदितार्थ = जे समस्त पदार्थोने जाणे छे अेवुं

- स्वात्मा-परात्मा-अन्यने जे जाणतां ज्ञान ज रहे,
छे चैत्यगृह, ते ज्ञानमूर्ति, शुद्ध पंचमहाव्रते. ८.
- चेतन स्वयं, सुख-दुःख-बंधन-मोक्ष जेने ^१अल्प छे,
षट्कायहितकर तेह भाख्युं चैत्यगृह जिनशासने. ९.
- दृग-ज्ञान-निर्मळचरणधरनी भिन्न जंगम काय जे,
—निर्ग्रथ ने वीतराग, ते प्रतिमा कही जिनशासने. १०.
- जाणे-जुअे निर्मळ ^२सुदृग सह, चरण निर्मळ आचरे,
ते वंदनीय निर्ग्रथ-संयतरूप प्रतिमा जाणजे. ११.
- ^३निःसीम दर्शन-ज्ञान ने सुख-वीर्य वर्ते जेमने,
शाश्वतसुखी, अशरीर ने कर्माष्टबंधविमुक्त जे, १२.
- अक्षोभ-निरुपम-अचल-ध्रुव, उत्पन्न जंगम रूपथी,
ते सिद्ध सिद्धिस्थानस्थित, ^४व्युत्सर्गप्रतिमा जाणवी. १३.
- दर्शावतुं संयम-सुदृग-सद्धर्मरूप, निर्ग्रथ ने
^५ज्ञानात्म मुक्तिमार्ग, ते दर्शन कह्युं जिनशासने. १४.
- ज्यम फूल होय सुगंधमय ने दूध घृतमय होय छे,
रूपस्थ दर्शन होय. सम्यग्ज्ञानमय अेवी रीते. १५.
- जिनबिंब छे, जे ज्ञानमय, वीतराग, संयमशुद्ध छे,
दीक्षा तथा शिक्षा करमक्षयहेतु आपे शुद्ध जे. १६.

१. अल्प = गौण. २. सुदृग = सम्यग्दर्शन.

३. निःसीम = अनंत

४. व्युत्सर्गप्रतिमा = कायोत्सर्गमय प्रतिमा. ५. ज्ञानात्म = ज्ञानमय.

- तेनी करो पूजा, विनय-वात्सल्य-प्रणमन तेहने,
जेने सुनिश्चित ज्ञान, दर्शन, चेतनापरिणाम छे. १७.
- तपव्रतगुणोत्थी शुद्ध, निर्मळ सुदृग सह जाणे-जुअे,
दीक्षा-सुशिक्षादायिनी अर्हतमुद्रा तेह छे. १८.
- इन्द्रिय-कषायनिरोधमय मुद्रा सुदृढसंयममयी,
—आ उक्त मुद्रा ज्ञानथी निष्पन्न, जिनमुद्रा कही. १९.
- संयमसहित सद्ध्यानयोग्य विमुक्तिपथना लक्ष्यने,
पामी शके छे ज्ञानथी जीव, तेथी ते ज्ञातव्य छे. २०.
- शर-अज्ञ वेध्य-अजाण जेम करे न प्राप्त निशानने,
अज्ञानी तेम करे न लक्षित मोक्षपथना लक्ष्यने. २१.
- रे ! ज्ञान नरने थाय छे; ते, सुजन तेम विनीतने;
ते ज्ञानथी, करी लक्ष, पामे मोक्षपथना लक्ष्यने. २२.
- मति चाप थिर, श्रुत दोरी, जेने रत्नत्रय शुभ बाण छे,
परमार्थ जेनुं लक्ष्य छे, ते मोक्षमार्गे नव चूके. २३.
- ते देव, जे सुरीते धरम ने अर्थ, काम, सुज्ञान दे;
ते वस्तु दे छे ते ज, जेने धर्म-दीक्षा-अर्थ छे. २४.
- ते धर्म जेह दयाविमळ, दीक्षा परिग्रहमुक्त जे,
ते देव जे निर्मोह छे ने उदय भव्य तणो करे. २५.

१. शर-अज्ञ = बाणविद्यानो अजाण.

२. वेध्य-अजाण = निशानसंबंधी अजाण.

३. चाप = धनुष्य.

४. शुभ = सारुं.

व्रत-सुदृगनिर्मळ, इन्द्रिसंयमयुक्त ने ^१निरपेक्ष जे, ते तीर्थमां दीक्षा-सुशिक्षारूप स्नान करो, मुने ! २६.

निर्मळ सुदर्शन-तपचरण-सद्धर्म-संयम-ज्ञानने, जो शान्तभावे युक्त तो, तीर्थ कह्युं जिनशासने. २७.

^२अभिधान-स्थापन-द्रव्य-भावे, ^३स्वीय गुणपर्यायथी, अर्हत जाणी शकाय छे आगति-च्यवन-संपत्तिथी. २८.

निःसीम दर्शन-ज्ञान छे, ^४वसुबंधलयथी मोक्ष छे, निरुपम गुणे आरूढ छे, —अर्हत आवा होय छे. २९.

जे पुण्य-पाप, जरा-जनम-व्याधि-मरण, गतिभ्रमण ने वळी दोषकर्म हणी थया ज्ञानात्म, ते अर्हत छे. ३०.

छे स्थापना अर्हतनी कर्तव्य पांच प्रकारथी, —^५'गुण', मार्गणा, पर्याप्ति तेम ज प्राण ने जीवस्थानथी.

अर्हत सयोगीकेवळीजिन तेरमे गुणस्थान छे; चोत्रीश अतिशययुक्त ने वसु प्रातिहार्यसमेत छे. ३२.

गति-इन्द्रि-काये, योग-वेद-कषाय-संयम-ज्ञानमां, दृग-भव्य-लेश्या-संज्ञी-समकित-आ'रमां अे स्थापवा. ३३.

आहार, काया, इन्द्रि, श्वासोच्छ्वास, भाषा, मन तणी, अर्हत उत्तम देव छे समृद्ध षट् पर्याप्तिथी. ३४.

१. निरपेक्ष = अभिलाषारहित.

२. अभिधान = नाम.

३. स्वीय = पोताना. ४. वसु = आठ ५. 'गुण' = गुणस्थान.

इन्द्रियप्राणो पांच, त्रण बळप्राण मन-वच-कायना,
बे आयु-श्वासोच्छ्वासप्राणो,—प्राण अे दस होय त्यां. ३५.

मानवभवे पंचेन्द्रि तेथी चौदमे जीवस्थान छे;
पूर्वोक्त गुणगणयुक्त, 'गुण'-आरूढ श्री अर्हत छे. ३६.

वणव्याधि-दुःख-जरा, अहार-निहारवर्जित, विमळ छे,
१अजुगुप्सिता, २वणनासिकामळ-श्लेष्म-स्वेद, अदोष छे; ३७.

दस प्राणं, षट् पर्याप्ति, अष्ट-सहस्र लक्षण युक्त छे,
सर्वांग गोक्षीर-शंखतुल्य ३सुधवल. मांस-रुधिर छे; ३८.

—आवा गुणे सर्वांग अतिशयवंत, ४परिमलम्हेकती,
औदारिकी काया अहो ! अर्हत्पुरुषनी जाणवी. ३९.

मदरागद्वेषविहीन, ५त्यक्तकषायमळ सुविशुद्ध छे,
मनपरिणमनपरिमुक्त, ६केवळभावस्थित अर्हत छे. ४०.

देखे दरशथी, ज्ञानथी जाणे दरव-पर्यायने,
सम्यक्त्वगुणसुविशुद्ध छे,—अर्हतनो आ भाव छे. ४१.

मुनि शून्यगृह, तरुतल वसे, ७उद्यान वा समशानमां,
८गिरिकंदरे, गिरिशिखर पर, विकराळ वन वा वसतिमां. ४२.

१. अजुगुप्सिता = जेना प्रत्ये जुगुप्सा न थाय अेवी.

२. वणनासिकामळ-श्लेष्म-स्वेद = नाकना मेलथी, कफथी ने परसेवाथी रहित.

३. सुधवल = धोळुं. ४. परिमल = सुगंध.

५. त्यक्तकषायमळ = कषायमळ रहित. ६. केवळ = अकलो; निर्भेळ; शुद्ध.

७. उद्यान = बगीचो. ८. गिरिकंदर = पर्वतनी गुफा.

- निजवश श्रमणना वास, तीरथ, शास्त्रचैत्यालय अने
जिनभवन मुनिनां लक्ष्य छे—जिनवर कहे जिनशासने. ४३.
- पंचेन्द्रिसंयमवंत, पंचमहाव्रती, निरपेक्ष ने
स्वाध्याय-ध्याने युक्त मुनिवरवृषभ इच्छे तेमने. ४४.
- गृह-ग्रंथ-मोहविमुक्त छे, परिषहजयी, अकषाय छे,
छे मुक्त पापारंभथी,—दीक्षा कही आवी जिने. ४५.
- धन-धान्य-^१पट, ^२कंचन-रजत, आसन-शयन, छत्रादिनां
सर्वे कुदान विहीन छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ४६.
- निंदा-प्रशंसा, शत्रु-मित्र, अलब्धि ने ^३लब्धि विषे,
तृण-कंचने समभाव छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ४७.
- निर्धन-सधन ने उच्च-मध्यम ^४सदन अनपेक्षितपणे
सर्वत्र ^५पिंड ग्रहाय छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ४८.
- निर्ग्रथ ने निःसंग ^६निर्मानाश, निरहंकार छे,
निर्मम, अराग, अद्वेष छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ४९.
- निःस्नेह, निर्भय, निर्विकार, अकलुष ने निर्मोह छे,
आशारहित, निर्लोभ छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ५०.

१. पट = वस्त्र.

२. कंचन-रजत = सोनुं-रूपं.

३. लब्धि = लाभ. ४. सदन = घर.

५. पिंड = आहार.

६. निर्मानाश = मान ने आशा रहित.

जन्म्या प्रमाणे रूप, ^१लंबितभुज, ^२निरायुध, शांत छे,
परकृत ^३निलयमां वास छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ५१.

उपशम-क्षमा-^४दमयुक्त, तनसंस्कारवर्जित ^५रूक्ष छे,
मद-राग-द्वेषविहीन छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ५२.

ज्यां मूढता-मिथ्यात्व नहि, ज्यां कर्म अष्ट विनष्ट छे,
सम्यक्त्वगुणथी शुद्ध छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ५३.

निर्ग्रथ दीक्षा छे कही षट् संहननमां जिनवरे;
भवि पुरुष भावे तेहने; ते कर्मक्षयनो हेतु छे ५४

तलतुषप्रमाण न बाह्य परिग्रह, राग तत्सम छे नहीं;
—आवी प्रव्रज्या होय छे सर्वज्ञजिनदेवे कही. ५५.

उपसर्ग-परिषह मुनि सहे, निर्जन स्थळे नित्ये रहे,
सर्वत्र काष्ठ, शिला अने भूतल उपर स्थिति ते करे. ५६.

स्त्री-^६षंड-पशु-^७दुःशीलनो नहि संग, नहि विकथा करे,
स्वाध्याय-ध्याने युक्त छे,—दीक्षा कही आवी जिने. ५७.

तपव्रतगुणोथी शुद्ध, संयम-सुदृगगुणसुविशुद्ध छे,
छे गुणविशुद्ध,—सुनिर्मळा दीक्षा कही आवी जिने. ५८.

१. लंबितभुज = नीचे लटकता हाथवाली.

२. निरायुध = शस्त्ररहित.

३. निलय = रहेठाण.

४. दम = इन्द्रियनिग्रह.

५. रूक्ष = तेलमर्दन रहित.

६. षंड = नपुंसक.

७. दुःशील = कुशील जनो.

- संक्षेपमां आयतनथी ^१दीक्षांत भाव अहीं कह्या,
 ज्यम शुद्धसम्यग्दरशयुत निर्ग्रथ जिनपथ वर्णव्या. ५६.
- रूपस्थ ^२सुविशुद्धार्थ वर्णन जिनपथे ज्यम जिन कर्युं,
 त्यम भव्यजनबोधन-अरथ षट्कायहितकर अहीं कहुं. ६०.
- जिनकथन भाषासूत्रमय शाब्दिक-विकाररूपे थयुं;
 ते जाण्युं शिष्ये भद्रबाहु तणा अने अेम ज कहुं. ६१.
- ^३जस बोधं द्वादश अंगनो, ^४चउदशपूरव-विस्तारनो,
 जय हो ^५श्रुतंधर भद्रबाहु गमकगुरु भगवाननो. ६२.

२०२

५. भावप्राभृत

- सुर-असुर-नरपतिवंध जिनवर-इन्द्रने, श्री सिद्धने,
 मुनि शेषने शिरसा नमी कहुं भावप्राभृत-शास्त्रने. १.
- छे भाव परथम लिंग, द्रवमय लिंग नहि परमार्थ छे;
 गुणदोषनुं कारण कह्यो छे भावने श्री जिनवरे. २.
- रे! भावशुद्धिनिमित्त बाहिर-ग्रंथ त्याग कराय छे;
 छे ^६विफळ बाहिर-त्याग ^७आंतर-ग्रंथथी संयुक्तने. ३.

१. दीक्षांत = प्रव्रज्या सुधीना.

२. सुविशुद्धार्थ = जेमां शुद्ध स्वरूप कहेलुं छे अेवुं; तात्त्विक.

३. जस = जेमने. ४. चउदश = चौद. ५. श्रुतंधर = श्रुतज्ञानी.

६. विफळ = निष्फळ. ७. आंतर-ग्रंथ = अभ्यंतर परिग्रह.

- छो कोटिकोटि भवो विषे निर्वस्त्र ^१लंबितकर रही
पुष्कळ करे तप, तोय भावविहीनने सिद्धि नहीं. ४.
- परिणाम होय अशुद्ध ने जो बाह्य ग्रंथ परित्यजे,
तो शुं करे अे बाह्यनो परित्याग भावविहीनने ? ५.
- छे भाव परथम, भावविरहित लिंगथी शुं कार्य छे?
हे पथिक! शिवनगरी तणो पथ ^२यत्नप्राप्य कह्यो जिने. ६.
- सत्पुरुष! काळ अनादिथी निःसीम आ- संसारमां
बहु वार भाव विना बहिर्निर्ग्रंथ रूप ग्रह्यां-तज्यां. ७.
- भीषण नरक, तिर्यच तेम कुदेव-मानवजन्ममां,
तें जीव! तीव्र दुखो सह्यां; तुं भाव रे! जिनभावना. ८.
- भीषण सुतीव्र असह्य दुःखो सप्त नरकावासमां
बहु दीर्घ काळप्रमाण तें वेद्यां, ^३अच्छिन्नपणे सह्यां. ९.
- रे! ^४खनन-^५उत्तापन-^६प्रजालन-^७वीजन-^८छेद-^९निरोधनां
चिरकाळ पाम्यो दुःख भावविहीन तुं तिर्यचमां. १०.

१. लंबितकर = नीचे लटकावेला हाथवाळा.

२. यत्न = प्रयत्न; (शुद्धभावरूप) उद्यम.

३. अच्छिन्न = सतत; निरंतर.

४. खनन = खोदवानी क्रिया.

५. उत्तापन = तपाववानी क्रिया. ६. प्रजालन = प्रजाळवानी क्रिया.

७. वीजन = पंखाथी पवन नाखवानी क्रिया. ८. छेद = कापवानी क्रिया.

९. निरोध = बंधनमां राखवानी क्रिया.

- तें सहज, कायिक, मानसिक, ^१आगंतु—चार प्रकारनां
दुःखो लह्यां निःसीम काळ मनुष्य केरा जन्ममां. ११.
- सुर-अप्सराना विरहकाळे हे महायश ! स्वर्गमां
^२शुभभावनाविरहितपणे तें तीव्र ^३मानस दुख सह्यां. १२.
- तुं स्वर्गलोके हीन देव थयो, दरवलिंगीपणे
कांदर्पी-आदिक पांच बूरी भावनाने भावीने. १३.
- बहु वार काळ अनादिथी पार्श्वस्थ-आदिक भावना
तें भावीने दुर्भावनात्मक बीजथी दुःखो लह्यां. १४.
- रे ! हीन देव थई तुं पाय्यो तीव्र मानस दुःखने,
देवो तणा गुणविभव, ऋद्धि, महात्म्य बहुविध देखीने. १५.
- मदमत्त ने आमक्त चार प्रकारनी विकथा महीं,
^४बहुशः कुदेवपणुं लह्युं तें, अशुभ भावे परिणमी. १६.
- हे मुनिप्रवर ! तुं चिर वस्यो बहु जननीना गर्भोपणे
निकृष्टमळभरपूर, अशुचि, बीभत्स गर्भाशय विषे. १७.
- जन्मो अनंत विषे अरे ! जननी अनेरी अनेरीनुं
स्तनदूध तें पीधुं महायश ! ^५उदधिजळथी अति घणुं. १८.

१. आगंतु = आगंतुक; बहारथी आवी पडेल.

२. शुभभावना = सारी भावना अर्थात् शुद्ध परिणति.

३. मानस = मानसिक. ४. बहुशः = अनेक वार.

५. उदधिजळ = समुद्रनुं पाणी.

- तुज मरणथी दुःखार्त वहु जननी अनेरी अनेरीनां
नयनो थकी जळ जे वह्यां ते उदधिजळथी अति घणां. १६.
- निःसीम भवमां त्यक्त तुज नख-नाळ-अस्थि-केशने
सुर कोई अेकत्रित करे तो १गिरिअधिक राशि बने. २०.
- जल-थल-अनल-पवने, नदी-गिरि-आभ-वन-वृक्षादिमां
वण आत्मवशता चिर वस्यो सर्वत्र तुं त्रण भुवनमां. २१.
- भक्षण कर्यां तें लोकवर्ती पुद्गलोने सर्वने,
फरी फरी कर्यां भक्षण छतां पाम्यो नहीं तुं तृप्तिने. २२.
- पीडित तृषाथी तें पीधां छे सर्व २त्रिभुवननीरने,
तोपण तृषा छेदाई ना; चिंतव अरे ! ३भवछेदने. २३.
- हे धीर ! हे मुनिवर ! ग्रह्यां-छोड्यां शरीर अनेक तें,
तेनुं नथी परिमाण कंई निःसीम भवसागर विषे. २४.
- ४विष-वेदनाथी, रक्तक्षय-भय-शस्त्रथी, संक्लेशथी,
आयुष्यनो क्षय थाय छे ५आहार-श्वासनिरोधथी; २५.
- हिम-अग्नि-जळथी, ६उच्च-पर्वतवृक्षरोहणपतनथी,
अन्याय-रसविज्ञान-योगप्रधारणादि प्रसंगथी. २६.

१. गिरिअधिक राशि = पर्वतथी पण वधु मोटो ढगलो.

२. त्रिभुवननीर = त्रण लोकनुं वधुं पाणी.

३. भवछेद = भवनो नाश.

४. विष-वेदनाथी = झेर खावार्थी तथा पीडाथी.

५. आहार-श्वासनिरोध = आहारनो ने श्वासनो निरोध.

६. उच्च-पर्वतवृक्षरोहणपतनथी = ऊंचा पर्वत ने वृक्ष पर चडतां पडी जवाथी.

- हे मित्र ! अे रीत जन्मीने चिर काळ नर-तिर्यञ्चमां,
बहु वार तुं पाम्यो महादुख आकरां अपमृत्युनां. २७.
- छासठ हजार त्रिशत अधिक छत्रीश तें मरणो कर्यां
अंतर्मुहूर्तप्रमाण काळ विषे निगोदनिवासमां. २८.
- रे ! जाण अेंशी साठ चाळीश क्षुद्रभव विकलेंद्रिना,
अंतर्मुहूर्ते क्षुद्रभव चोवीश पंचेन्द्रिय तणा. २९.
- वण रत्नत्रयप्राप्ति तुं अे रीत दीर्घ संसारे भम्यो,
—भाख्युं जिनोअे आम; तेथी रत्नत्रयने आचरो. ३०.
- निज आत्ममां रत जीव जे ते प्रगट सम्यग्दृष्टि छे,
१तद्बोध छे सुज्ञान, त्यां चरवुं २चरण छे;—मार्ग अे. ३१.
- हे जीव ! ३कुमरणमरणथी तुं मर्यो अनेक भवो विषे;
तुं भाव सुमरणमरणने ४जर-मरणना हरनारने. ३२.
- त्रण लोकमां परमाणु सरखुं स्थान कोई रह्युं नथी,
ज्यां द्रव्यश्रमण थयेल जीव मर्यो नथी, जन्म्यो नथी. ३३.
- जीव ५जनि-जरा-मृततप्त काळ अनंत पाम्यो दुःखने,
जिनलिंगने पण धारी ६पारंपर्यभावविहीनने. ३४.

१. तद्बोध = तेनुं ज्ञान; निज आत्माने जाणवुं ते.

२. चरण = चारित्र; सम्यक्चारित्र. ३. कुमरणमरण = कुमरणरूप मरण.

४. जर = जरा. ५. जनि-जरा-मृततप्त = जन्म, जरा अने मरणथी पीडित
वर्ततो थको. ६. पारंपर्यभावविहीन = परंपरागत भावलिंगथी रहित;
आचार्योनी परंपराथी चाल्या आवता भावलिंग रहित.

- प्रतिदेश-पुद्गल-काळ-आयुष-नाम-परिणामस्थ तें
 १ बहुशः शरीर ग्रह्यां-तज्यां निःसीम भवसागर विषे. ३५.
- त्रणशत-अधिक चाळीस-त्रण रज्जुप्रमित आ लोकमां
 तजी आठ कोई प्रदेश ना, परिभ्रमित नहि आ जीव ज्यां. ३६.
- प्रत्येक अंगुल छत्रुं जाणो रोग मानवदेहमां;
 तो केटला रोगो, कहो, आ अखिल देह विषे, भला ! ३७.
- अे रोग पण सघळा सद्द्या तें पूर्वभवमां परवशे;
 तुं सही रह्यो छे आम, यशधर ! अधिक शुं कहीअे तने ? ३८.
- मळ-मूत्र-^२शोणित-पित्त, ^३करम, बरोळ, ^४यकृत, ^५आंत्र ज्यां,
 त्यां मास नव-दश तुं वस्यो बहु वार जननी-उदरमां. ३९.
- जननी तणुं चावेल ने खाधेल अेटुं खाईने,
 तुं जननी केरा जठरमां वमनादिमध्य वस्यो अरे ! ४०.
- तुं अशुचिमां लोट्यो घणुं शिशुकाळमां अणसमजमां,
 मुनिवर ! अशुचि आरोगी छे बहु वार तें बालत्वमां. ४१.
- ^६पल-पित्त-शोणित-आंत्रथी दुर्गंध शब सम ज्यां स्रवे,
 चिंतव तुं ^७पीप-वसादि-अशुचिभरेल कायाकुंभने. ४२.

१. बहुशः = अनेक वार.

२. शोणित = लोही.

३. करम = कृमि.

४. यकृत = कलेजुं.

५. आंत्र = आंतरडां.

६. पल = मांस.

७. पीप-वसादि = परु, चरबी वगैरे.

रे ! भावमुक्त विमुक्त छे, स्वजनादिमुक्त न मुक्त छे,
ईम भावीने हे धीर ! तुं परित्याग ^१आंतर ग्रंथने. ४३.

देहादिसंग तज्यो अहो ! पण मलिन मानकषायथी
आतापना करता रह्या बाहुबली मुनि क्यां लगी ? ४४.

तन-भोजनादिप्रवृत्तिना तजनार मुनि मधुपिंगले,
हे ^२भव्यनूत ! निदानथी ज लह्युं नहीं ^३श्रमणत्वने. ४५.

बीजाय साधु वसिष्ठ पाम्या दुःखने निदानथी;
अेवुं नथी को स्थान के जे स्थान जीव भम्यो नथी. ४६.

अेवो न कोई प्रदेश लख चोराशी योनिनिवासमां,
रे ! भावविरहित श्रमण पण परिभ्रमणने पाम्यो न ज्यां. ४७.

छे भावथी लिंगी, न लिंगी द्रव्यलिंगथी होय छे;
तेथी धरो रे ! भावने, द्रवलिंगथी शुं साध्य छे ? ४८.

दंडकनगर करी दग्ध सघळुं दोष अभ्यंतर वडे,
जिनलिंगथी पण बाहु अे ऊपज्या नरक रौरव विषे. ४९.

वळी अे रीते बीजा दरवसाधु द्वीपायन नामना
वरज्ञानदर्शनचरणभ्रष्ट, अनंतसंसारि थया. ५०.

१. आंतर = अभ्यंतर.

२. भव्यनूत = भव्यजीवो जेनी प्रशंसा करे छे अेवा; भव्य जीवो वडे जेने नमवासां
आवे छे अेवा.

३. श्रमणत्वने = भावमुनिपणाने.

- बहुयुवतिजनवेष्टित^१ छतां पण धीर शुद्धमति अहा !
 अे भावसाधु शिवकुमार ^२परीतसंसारी थया. ५१.
- जिनवरकथित ^३अेकादशांगमयी सकल श्रुतज्ञानने
 भणवा छतांय अभव्यसेन न प्राप्त भावमुनित्वने. ५२.
- शिवभूतिनामकः भावशुद्ध महानुभाव मुनिवरा
^४'तुषमाष' पदने गोखता पाम्या प्रगट सर्वज्ञता. ५३.
- नग्नत्व तो छे भावथी; शुं नग्न ^५बाहिर-लिंगथी ?
 रे ! नाश कर्मसमूह केरो होय भावथी द्रव्यथी. ५४.
- नग्नत्व भावविहीन भाख्युं अकार्य देव जिनेश्वरे,
 —ईम जाणीने हे धीर ! नित्ये भाव तुं निज आत्मने. ५५.
- देहादिसंगविहीन छे, वर्ज्या सकळ मानादि छे,
 आत्मा विषे रत आत्म छे, ते भावलिंगी श्रमण छे. ५६.
- परिवर्जुं छुं हुं ममत्व, निर्मम भावमां स्थित हुं रहुं;
 अवलंबुं छुं मुज आत्मने, अवशेष सर्व हुं परिहरुं. ५७.
- मुज ज्ञानमां आत्मा खरे, दर्शन-चरितमां आतमा,
 पचखाणमां आत्मा ज, संवर-योगमां पण आतमा. ५८.

१. वेष्टित = विटळायेला.

२. परीतसंसारी = परिमित संसारवाळा; अल्पसंसारी.

३. अेकादशांग = अगियार अंग.

४. तुषमाष = फोतरां अने अडद.

५. बाहिर = बाह्य.

- મારો સુશાશ્વત એક દર્શનજ્ઞાનલક્ષણ જીવ છે;
બાકી બધા સંયોગલક્ષણ ભાવ મુજથી બાહ્ય છે. ૫૬.
- તું શુદ્ધ ભાવે ભાવ રે! સુવિશુદ્ધ નિર્મલ આત્મને,
જો શીઘ્ર ચડગતિમુક્ત થઈ ઇચ્છે મુશાશ્વત સૌખ્યને. ૬૦.
- જે જીવ જીવસ્વભાવને ભાવે, ^૧મુભાવે પરિણમે,
^૨જર-મરણનો કરી નાશ તે નિશ્ચય લહે નિર્વાણને. ૬૧.
- છે જીવ જ્ઞાનસ્વભાવ ને ચૈતન્યયુત—ભાખ્યું જિને;
એ જીવ છે જ્ઞાતવ્ય, ^૩કર્મવિનાશકરણનિમિત્ત જે. ૬૨.
- ‘સત્’ હોય જીવસ્વભાવ ને ન ‘અસત્’ સરવથા જેમને,
તે દેહવિરહિત વચનવિષયાતીત મિદ્ધપણું લહે. ૬૩.
- જીવ ચેતનાગુણ, અરસરૂપ, અગંધશબ્દ, અવ્યક્ત છે,
વઢી લિંગગ્રહણવિહીન છે, સંસ્થાન ભાખ્યું ન તેહને. ૬૪.
- તું ભાવ ઝટ અજ્ઞાનનાશન જ્ઞાન પંચપ્રકાર રે!
એ ભાવનાપરિણત ^૪સ્વર્ગ-શિવસૌખ્યનું ભાજન બને. ૬૫.
- રે! પઠન તેમ જ શ્રવણ ભાવવિહીનથી શું સધાય છે ?
^૫સાગાર-અણગારત્વના કારણસ્વરૂપે ભાવ છે. ૬૬.

૧. સુભાવ = સારો ભાવ અર્થાત્ શુદ્ધ ભાવ. ૨. જર = જરા.

૩. કર્મવિનાશકરણનિમિત્ત = કર્મનો ક્ષય કરવાનું નિમિત્ત.

૪. સ્વર્ગ-શિવસૌખ્ય = સ્વર્ગ અને મોક્ષનાં સુખ.

૫. સાગાર-અણગારત્વ = શ્રાવકપણું અને મુનિપણું.

छे नग्न तो तिर्यच-नागक सर्व जीवो द्रव्यथी;
परिणाम छे नहि शुद्ध ज्यां त्यां भावश्रमणपणुं नथी. ६७.

ते नग्न पामे दुःखने, ते नग्न चिर भवमां भमे,
ते नग्न बोधि लहे नहीं, जिनभावना नहि जेहने. ६८.

शुं साध्य तारे अयशभाजन पापयुत नग्नत्वथी,
—बहु हास्य-मत्सर-पिशुनता-मायाभर्या श्रमणत्वथी ? ६९.

थई शुद्ध ^१आंतर-भावमळविण, प्रगट कर जिनलिंगने;
जीव भावमळथी मलिन बाहिर-संगमां ^२मलिनित बने. ७०.

नग्नत्वधर पण धर्ममां नहि वास, ^३दोषावास छे,
ते ^४इक्षुफूलसमान निष्फळ-निर्गुणी, नटश्रमण छे. ७१.

जे गगयुत जिनभावनाविरहित-दरवनिर्ग्रथ छे,
पामे न बोधि-समाधिने ते विमळ जिनशासन विषे. ७२.

मिथ्यात्व-आदिक दोष छोडी नग्न भाव थकी बने,
पछी द्रव्यथी मुनिलिंग धारे जीव जिन-आज्ञा वडे. ७३.

छे भाव ^५दिवशिवसौख्यभाजन; भाववर्जित श्रमण जे
पापी ^६कर्ममळमलिनमन, तिर्यचगतिनुं पात्र छे. ७४.

१. आंतर-भावमळविण = अभ्यंतर भावमलिनता रहित. २. मलिनित = मलिन.

३. दोषावास = दोषोनुं घर. ४. इक्षुफूल = शेरडीनां फूल.

५. दिवशिवसौख्यभाजन = स्वर्ग अने मोक्षनां सुखनुं भाजन.

६. कर्ममळमलिनमन = कर्ममळथी मलिन मनवालो.

नर-^१अमर-विद्याधर वडे ^२संस्तुत ^३करांजलिपंक्तिथी
^४चक्री-विशाळविभूति बोधि प्राप्त थाय ^५सुभावथी. ७५.

शुभ, अशुभ तेम ज शुद्ध—त्रणविध भाव जिनप्रज्ञप्त छे;
 त्यां 'अशुभ' ^६आरत-रौद्र ने 'शुभ' धर्म्य छे—भाख्युं जिने.

आत्मा विशुद्धस्वभाव आत्म महीं रहे ते 'शुद्ध' छे;
 —आ जिनवरे भाखेल छे; जे श्रेय, आचर तेहने. ७७.

छे ^७गलितमानकपाय, मोह विनष्ट थई ^८समचित्त छे,
 ते जीव ^९त्रिभुवनसार बोधि लहे जिनेश्वरशासने. ७८.

विषये विरत मुनि सोळ उत्तम कारणोने भावीने,
 बांधे ^{१०}अचिर काले करम तीर्थकरत्व-सुनामने. ७९.

तु भाव बार-प्रकार तप ने तेर किरिया ^{११}त्रणविधे,
 वश राख ^{१२}मन-गज मत्तने मुनिप्रवर ! ज्ञानांकुश वडे. ८०.

१. अमर = देव. २. संस्तुत = जेनी सागी गीते प्रसंशा करवामां आवे छे अेवी.

३. करांजलिपंक्ति = हाथनी अंजलिनी (अर्थात् जोडेला बे हाथनी) हारमाळा.

४. चक्री-विशाळविभूति = चक्रवर्तीनी घणी मांटी ऋद्धि.

५. सुभावथी = सारा भावथी. ६. आरत-रौद्र = आर्त अने रौद्र.

७. गलितमानकपाय = जेनो मानकपाय नष्ट थयो छे अेवो.

८. समचित्त = जेनुं चित्त समभाववाळुं छे अेवो.

९. त्रिभुवनसार = त्रण लोकमां सारभूत. १०. अचिर काले = अल्प काले.

११. त्रणविधे = त्रण प्रकारे अर्थात् मन-वचन-कायाथी.

१२. मन-गज मत्तने = मनरूपी मदमाता हाथीने.

- १ भूशयन, भिक्षा, द्विविध संयम, ३पंचविध-पटत्याग छे,
 ३छे भाव भावितपूर्व, ते जिनलिंग निर्मळ शुद्ध छे. ८१.
- रत्नो विषे ज्यम श्रेष्ठ ४हीरक, तरुगणे ५गोशीर्ष छे,
 जिनधर्म ६भाविभवमथन त्यम श्रेष्ठ छे धर्मो विषे. ८२.
- पूजादिमां व्रतमां जिनोअे पुण्य भाख्युं शासने;
 छे धर्म भाख्यो मोहक्षोभविहीन निज परिणामने. ८३.
- परतीत, रुचि, श्रद्धान ने स्पर्शन करे छे पुण्यनुं
 ते भोग केरुं निमित्त छे, न निमित्त कर्मक्षय तणुं. ८४.
- रागादि दोष समस्त छोडी आतमा निजरत रहे
 ७भवतरणकारण धर्म छे ते—अेम जिनदेवो कहे. ८५.
- पण आत्मने इच्छ्या विना पुण्यो अशेष करे भले,
 तोपण लहे नहि सिद्धिने, भवमां भमे—आगम कहे. ८६.
- आ कारणे ते आत्मनी त्रिविधे तमे श्रद्धा करो,
 ते आत्मने जाणो प्रयत्ने, मुक्तिने जेथी वरो. ८७.

१. भूशयन = भूमि पर सूवुं ते.

२. पंचविध-पटत्याग = पांच प्रकारनां वस्त्रोनो त्याग.

३. छे भाव भावितपूर्व = ज्यां भाव (शुद्ध भाव) पूर्वे भाववामां आव्यो होय छे;
 ज्यां पहलां यथोचित शुद्धभावरूप परिणमन थयुं होय छे.

४. हीरक = हीरो.

५. गोशीर्ष = बावनाचंदन.

६. भाविभवमथन = भावी भवोने हणनार.

७. भवतरणकारण = संसारने तरो जवाना कारणभूत.

- अविशुद्ध भावे मत्स्य तंदुल पण गयो महा नरकमां,
तेथी निजात्मा जाणी नित्य तुं भाव रे ! जिनभावना. ८८.
- रे ! बाह्यपरिग्रहत्याग, पर्वत-कंदरादिनिवास ने
ज्ञानाध्ययन सघळुं निरर्थक भावविरहित श्रमणने. ८९.
- तुं इन्द्रिसेना तोड, मनमर्कट तुं वश कर यत्नथी,
नहि कर तुं जनरंजनकरण बहिरंग-व्रतवेशी बनी. ९०.
- मिथ्यात्व ने नव नोकषाय तुं छोड भावविशुद्धिथी;
कर भक्ति जिन-आज्ञानुसार तु चैत्य-प्रवचन-गुरु तणी. ९१.
- तीर्थेशभाषित-अर्थमय, गणधरसुविरचित जेह छे,
प्रतिदिन तुं भाव विशुद्धभावे ते अतुल श्रुतज्ञानने. ९२.
- जीव ज्ञानजळ पी, तीव्रतृष्णादाहशोष थकी छूटी,
शिवधामवासी सिद्ध थाय—त्रिलोकना चूडामणि. ९३.
- बावीश परिषह सर्वकाळ सहो मुने ! काया वडे,
अप्रमत्त रही, सूत्रानुसार, निवारी संयमघातने. ९४.
- पथ्थर रह्यो चिर पाणीमां भेदाय नहि पाणी वडे,
त्यम साधु पण भेदाय नहि उपसर्ग ने परिषह वडे. ९५.
- तुं भाव द्वादश भावना, वळी भावना पच्चीशने;
शुं छे प्रयोजन भावविरहित बाह्यलिंग थकी अरे ! ९६.

१. मनमर्कट = मनरूपी मांकडुं; मनरूपी वांदरुं.

२. तीर्थेशभाषित = तीर्थकरदेवे कहेल.

१पूगणविरत पण भाव तुं नव अर्थ, तत्त्वो सातने,
मुनि ! भाव जीवसमासने, गुणस्थान भाव तुं चौदने. ६७.

अब्रह्म दशविध टाळी तुं प्रगटाव नवविध ब्रह्मने;
रे ! ३मिथुनसंज्ञासक्त तें कर्तुं भ्रमण ३भीम भवार्णवे. ६८.

भावे सहित मुनिवर लहे आराधना चतुरंगने;
भावे रहित तो हे श्रमण ! चिर दीर्घसंसारे भमे. ६९.

रे ! भावमुनि कल्याणकोनी श्रेणियुत सौख्यो लहे;
ने द्रव्यमुनि तिर्यच-मनुज-कुदेवमां दुःखो सहे. १००.

अविशुद्ध भावे दोष छेंताळीस सह ग्रही अशनने,
तिर्यचगति मध्ये तुं पाम्यो दुःख बहु परवशपणे. १०१.

तुं विचार रे !—तें दुःख तीव्र लह्यां अनादि काळथी,
करी अशन-पान सचित्तनां अज्ञान-गृद्धि-दर्पथी^४. १०२.

कंई कंद-मूलो, पत्र-पुष्पो, बीज आदि सचित्तने
तुं मान-मदथी खाईने भटक्यो अनंत भवार्णवे. १०३.

रे ! विनय पांच प्रकारनो तुं पाळ मन-वच-तन वडे;
नर होय जे अविनीत ते पामे न सुविहित मुक्तिने. १०४.

१. पूगणविरत = पूर्णविरत; सर्वविरत.

२. मिथुनसंज्ञासक्त = मैथुनसंज्ञामां आसक्त.

३. भीम भवार्णव = भयंकर संसारसमुद्र.

४. दर्प = ऊद्धताई; गर्व.

- तुं हे महायश ! भक्तिराग वडे स्वशक्तिप्रमाणमां
जिनभक्तिरत ^१दशभेद वैयावृत्त्यने आचर सदा. १०५.
- तें अशुभ भावे मन-वचन-तनथी कर्यो कंई दोष जे,
कर गर्हणा गुरुनी समीपे गर्व-माया छोडीने. १०६.
- दुर्जन तणी निष्ठुर-कटुक वचनोरूपी थप्पड सहे
सत्पुरुष निर्ममभावयुत-मुनि ^२कर्ममळलयहेतुअे. १०७.
- मुनिप्रवर ^३परिमंडित क्षमाथी पाप निःशेषे दहे,
नर-अमर-विद्याधर तणा स्तुतिपात्र छे निश्चितपणे. १०८.
- तेथी क्षमागुणधर ! क्षमा कर जीव सौने ^४त्रणविधे;
उत्तमक्षमाजळ सींच तुं चिरकाळना क्रोधाग्निने. १०९.
- सुविशुद्धदर्शनधरपणे ^५वरबोधि केरा हेतुअे
चिंतव तुं दीक्षाकाळ-आदिक, जाणी सार-असारने. ११०.
- करी प्राप्त ^६आंतरलिंगशुद्धि सेव चउविध लिंगने;
छे बाह्यलिंग अकार्य भावविहीनने निश्चितपणे. १११.
- आहार-भय-परिग्रह-मिथुनसंज्ञा थकी मोहितपणे
तुं परवशे भटक्यो अनादि काळथी ^७भवकानने. ११२.

१. दशभेद = दशविध. २. कर्ममळलयहेतुअे = कर्ममळनो नाश करवा माटे.

३. परिमंडित क्षमाथी = क्षमाथी सर्वतः शोभित.

४. त्रणविधे = त्रण प्रकारे अर्थात् मन-वचन-कायाथी.

५. वरबोधि केरा हेतुअे = उत्तमबोधिनिमित्ते; उत्तम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थे.

६. आंतर = अभ्यंतर. ७. भवकानने = संसाररूपी वनमां.

- १तरुमूल, आतापन, २बहिःशयनादि उत्तरगुणने
तुं शुद्ध भावे पाळ, पूजालाभथी निःस्पृहपणे. ११३.
- तुं भाव प्रथम, द्वितीय, त्रीजा, ३तुर्य, पंचम तत्त्वने,
४आद्यंतरहित ५त्रिवर्गहर जीवने, ६त्रिकरणविशुद्धिअे. ११४.
- भावे न ज्यां लगी तत्त्व, ज्यां लगी ७चिंतनीय न चिंतवे,
जीव त्यां लगी पामे नहीं ८जर-मरणवर्जित स्थानने. ११५.
- रे! पाप सघळुं, पुण्य सघळुं, थाय छे परिणामथी;
परिणामथी छे बंध तेम ज मोक्ष जिनशासन महीं. ११६.
- ९मिथ्या-कषाय-अविरति-योग १०अशुभलेश्यान्वित वडे
जिनवचपराङ्मुख आतमा बांधे अशुभरूप कर्मने. ११७.
- विपरीत तेथी भावशुद्धिप्राप्त बांधे शुभने;
—अे रीत बांधे अशुभ-शुभ; संक्षेपथी ज कहेल छे. ११८.

१. तरुमूल = वर्षाकाळे वृक्ष नीचे स्थिति करवी ते.

२. बहिःशयन = शीतकाळे बहार सूवुं ते.

३. तुर्य = चतुर्थ. ४. आद्यंतरहित = अनादि-अनंत.

५. त्रिवर्गहर = धर्म-अर्थ-कामनो नाश करनार अर्थात् अपवर्गना - मोक्षने - उत्पन्न करनार.

६. त्रिकरणविशुद्धिअे = त्रण करणी शुद्धिपूर्वक; शुद्ध मन-वचन-कायाथी.

७. चिंतनीय = चिंतववायोग्य. ८. जर = जरा.

९. मिथ्या = मिथ्यात्व.

१०. अशुभलेश्यान्वित = अशुभ लेश्यायुक्त; अशुभ लेश्यावाळा.

वेष्टित छुं हुं ज्ञानावरणकर्मादि कर्माष्टक वडे;
वाळी, हुं प्रगटावुं ३अमितज्ञानादिगुणवेदन हवे. ११६.

चोराशी लाख गुणो, अढार हजार भेदो शीलना,
—सघळुंय प्रतिदिन भाव; बहु प्रलपन ३निरर्थथी शुं भला ?

ध्या धर्म्य तेम ज शुक्लने, तजी आर्त तेम ज रौद्रने;
चिरकाळ ध्यायां आर्त तेम ज रौद्र ध्याानो आ जीवे. १२१.

द्रव्ये श्रमण इन्द्रियसुखाकुल होईने छेदे नहीं;
भववृक्ष छेदे भावश्रमणो ध्यानरूप ४कुठारथी. १२२.

ज्यम ५गर्भगृहमां पवननी बाधा रहित दीपक बळे,
ते रीत ६रागानिलविवर्जित ध्यानदीपक पण जळे. १२३.

ध्या पंच गुरुने, शरण-मंगल-लोकउत्तम जेह छे,
आराधनानायक, ७अमर-नर-खचरपूजित, वीर छे. १२४.

ज्ञानात्न निर्मळ नीर शीतळ प्राप्त करीने, ८भावथी
९भवि थाय छे १०जर-मरण-व्याधिदाहवर्जित, ११शिवमयी. १२५.

१. वेष्टित = घेरायेलो; आच्छादित; रुकावट पामेलो. २. अमित = अनंत.

३. निरर्थ = निरर्थक; जेनाथी कोई अर्थ सरे नहि अेवा. ४. कुठार = कुहाडो.

५. गर्भगृह = मकाननी अंदरनो भाग.

६. रागानिलविवर्जित = रागरूपी पवन रहित.

७. अमर-नर-खचरपूजित = देवो, मनुष्यो अने विद्याधरोथी पूजित.

८. भावथी = शुद्ध भावथी. ९. भवि = भव्य जीवो.

१०. जर-मरण-व्याधिदाहवर्जित = जरा-मरण-रोगसंबंधी बळतराथी मुक्त.

११. शिवमयी = आत्यंतिक सौख्यमय अर्थात् सिद्ध.

ज्यम बीज होतां दग्ध, अंकुर भूतले ऊगे नहीं,
 त्यम कर्मबीज बळये भवांकुर भावश्रमणोने नहीं. १२६.
 रे! भावश्रमण सुखो लहे ने द्रव्यमुनि दुःखो लहे;
 तुं भावथी संयुक्त था, गुणदोष जाणी अे रीते. १२७.
 १तीर्थेश-गणनाथादिगत अभ्युदययुत सौख्यो तणी
 प्राप्ति करे छे भावमुनि;—भाख्युं जिने संक्षेपथी. १२८.
 ते छे सुधन्य, ३त्रिधा सदैव नमस्करण हो तेमने,
 जे ३भावयुत, दृगज्ञानचरणविशुद्ध, मायामुक्त छे. १२९.
 ४खेचर-सुरादिक विक्रियाथी ऋद्धि अतुल करे भले,
 जिनभावनापरिणत सुधीर लहे न त्यां पण मोहने. १३०.
 तो देव-नरनां तुच्छ सुख प्रत्ये लहे शुं मोहने
 मुनिप्रवर जे जाणे, ५जुअे ने चिंतवे छे मोक्षने? १३१.
 रे! ६आक्रमे न जरा, ७गदाग्नि दहे न ८तनकुटि ज्यां लगी,
 बळ इन्द्रियोनुं नव घटे, करी ले तुं निजहित त्यां लगी. १३२.

१. तीर्थेश-गणनाथादिगत = तीर्थकर-गणधरादिसंबंधी.

२. त्रिधा = त्रण प्रकारे अर्थात् मन-वचन-कायाथी.

३. भावयुत = शुद्ध भाव सहित.

४. खेचर-सुरादिक = विद्याधर, देव वगैरे.

५. जुअे = देखे, श्रद्धे.

६. आक्रमे = आक्रमण करे; हल्लो करे; घेगी वळे; पकडे.

७. गदाग्नि = रोगरूपी अग्नि.

८. तनकुटि = कायारूपी झूपडी.

छ अनायतन तज, कर दया षट्जीवनी १त्रिविधे सदा,
महासत्त्वने तुं भाव रे ! २अपूरवपणे हे मुनिवरा ! १३३.

भमतां ३अमित भवसागरे, तें भोगसुखना हेतुअ
सहुजीव-दशविधप्राणनो आहार कीधो त्रणविधे. १३४.

प्राणीवधोथी हे महायश ! योनि लख चोराशीमां
उत्पत्तिनां ने मरणनां दुःखो निरंतर तें लह्यां. १३५.

तुं भूत-प्राणी-सत्त्व-जीवने त्रिविध शुद्धि वडे मुनि !
दे ४अभय, जे ५कल्याणसौख्यनिमित्त ६पारंपर्यथी. १३६.

शत-अंशी किरियावादीना, चोराशी ७तेथी विपक्षना,
बत्रीश सडसठ भेद छे वैनयिक ने अज्ञानीना. १३७.

सुरीते सुणी जिनधर्म पण प्रकृति अभव्य नहीं तजे,
साकरसहित क्षीरपानथी पण सर्प नहि निर्विष बने. १३८.

दुर्बुद्धि-दुर्मतदोषथी ८मिथ्यात्वआवृतदृग रहे,
आत्मा अभव्य जिनेंद्रज्ञापित धर्मनी रुचि नव करे. १३९.

१. त्रिविधे = मन-वचन-काययोगथी. २. अपूरवपणे = अपूर्वपणे.

३. अमित = अनंत. ४. अभय = अभयदान.

५. कल्याण = तीर्थकरदेवनां कल्याणक. ६. पारंपर्यथी = परंपराअ.

७. तेथी विपक्षना = अक्रियावादीना.

८. दुर्बुद्धि-दुर्मतदोषथी = दुर्बुद्धिने लीधे तथा कुमत-अनुरूप दोषोने लीधे.

९. मिथ्यात्वआवृतदृग = मिथ्यात्वथी आच्छादित दृष्टिवाळो.

कुत्सितधरम-गत, भक्ति जे 'पाखंडी कुत्सितनी करे,
कुत्सित करे तप, तेह कुत्सित गति तपुं भाजन बने. १४०.

हे धीर ! चिंतव—जीव आ मोहित कुनय-दुःशास्त्रथी
'मिथ्यात्वघर संसारमां रखड्यो अनादि काळथी. १४१.

उन्मार्गने छोडी त्रिशत-तेसठप्रमित पाखंडीना,
जिनमार्गमां मन रोक; बहु प्रलपन 'निरर्थथी शुं भला ?

जीवमुक्त शब कहेवाय, "चल शब' जाण दर्शनमुक्तने;
शब लोक मांही अपूज्य, चल शब होय लोकोत्तर विषे. १४३.

ज्यम चंद्र तारागण विषे, 'मृगराज सौ 'मृगकुल विषे,
त्यम अधिक छे सम्यक्त्व ऋषिश्रावक-द्विविध धर्मो विषे. १४४.

नागेंद्र शोभे फेणमणिमाणिक्यकिरणे चमकतो,
ते रीत शोभे शासने जिनभक्त दर्शननिर्मळो. १४५.

शशिबिंब तारकवृंद सह निर्मळ नभे शोभे घणुं,
त्यम शोभतुं तपव्रतविमळ जिनलिंग दर्शननिर्मळुं. १४६.

१. पाखंडी कुत्सितनी = कुत्सित (निंदित, धिक्करवा योग्य, खराब, अधम) अवा
पाखंडीओनी.

२. मिथ्यात्वघर = (१) मिथ्यात्वनुं घर अवा, अथवा (२) मिथ्यात्व जेनुं घर छे
अवा.

३. निरर्थ = निरर्थक; व्यर्थ. ४. चल शब = हालतुं-चालतुं मडदुं.

५. मृगराज = सिंह. ६. मृगकुल = पशुसमूह.

- ईम जाणीने गुणदोष धारो भावथी दृगर्लने,
जे मार गुणरलो विषे ने प्रथम शिवसोपान छे. १४७.
- कर्ता तथा भोक्ता, अनादि-अनंत, देहप्रमाण ने
वणमूर्ति, दृगज्ञानोपयोगी जीव भाख्यो जिनवरे. १४८.
- दृगज्ञानआवृति, मोह तेम ज अंतरायक कर्मने
सम्यकपणे जिनभावनाथी भव्य आत्मा क्षय करे. १४९.
- चउघातिनाशे ज्ञान-दर्शन-सौख्य-बळ चारे गुणो
प्राकट्य पामे जीवने, परकाश लोकालोकनो. १५०.
- ते ज्ञानी, शिव, परमेष्ठी छे, विष्णु, चतुर्मुख, बुद्ध छे,
आत्मा तथा परमात्मा, सर्वज्ञ, कर्मविमुक्त छे. १५१.
- चउघातिकर्मविमुक्त, दोष अढार रहित, सदेह अ
त्रिभुवनभवनना दीप जिनवर बोधि दो उत्तम मने. १५२.
- जे परमभक्तिरागथी जिनवरपदांबुजने नमे,
ते जन्मवेलीमूळने वर भावशस्त्र वडे खणे. १५३.
- ज्यम कमलिनीना पत्रने नहि सलिललेप स्वभावथी,
त्यम सत्पुरुषने लेप विषयकषायनो नहि भावथी. १५४.

१. वणमूर्ति = अमूर्त; अरूपी.

२. दृगज्ञानआवृति = दर्शनावरण ने ज्ञानावरण.

३. प्राकट्य = प्रगटपणुं.

४. त्रिभुवनभवनना दीप = त्रण लोकरूपी घरना दीपक अर्थात् दीवारूप.

५. वर = उत्तम. ६. खणे = खोदे छे. ७. मलिल = पाणी.

कहं ते ज मुनि जे शीलसंयमगुण—समस्त कळा—धरे;
जे ^१मलिनमन बहुदोषघर, ते तो न श्रावकतुल्य छे. १५५.
ते धीग्वीर नरो, ^२क्षमादम-तीक्ष्णखड्गे जेमणे
जीत्या सुदुर्जय-उग्रबळ-मदमत्त-सुभट^३—कषायने. १५६.
छे धन्य ते भगवंत, ^४दर्शनज्ञान-उत्तमकर वडे
जे पार करता ^५विषयमकराकरपतित ^६भवि जीवने. १५७.
मुनि ज्ञानशस्त्रे छेदता संपूर्ण मायावेलने,
—बहु विषय-विषपुष्पे खीली, ^७आरूढ मोहमहाद्रुमे. १५८.
मद-मोह-गारवमुक्त ने जे युक्त करुणाभावथी,
सघळा ^८दुरितरूप थंभने ^९घाते चरण-तरवारथी. १५९.
तारावली सह जे रीते पूर्णेन्दु शोभे आभमां,
गुणवृंदमणिमाळा सहित मुनिचंद्र जिनमतगगनमां. १६०.

१. मलिनमन = मलिन चित्तवाळो.

२. क्षमादम-तीक्ष्णखड्गे = क्षमा (प्रशम) अने जितेंद्रियतारूपी तीक्ष्ण तरवारथी.

३. सुभट = योद्धा.

४. दर्शनज्ञान-उत्तमकर = दर्शन अने ज्ञानरूप (बे) उत्तम हाथ.

५. विषयमकराकर = विषयोरूपी समुद्र (मगरोनुं स्थान).

६. भवि = भव्य.

७. आरूढ मोहमहाद्रुमे = मोहरूपी महावृक्ष पर चडेली.

८. दुरित = दुष्कर्म; पाप.

९. घाते = नाश करे.

- १चक्रेश-केशव-गम-जिन-गणी-सुरवरादिक-सौख्यने,
 चारणमुनींद्रमुक्छिने, २सुविशुद्धभाव नरो लहे. १६१.
- जिनभावनापरिणत जीवो वरसिद्धिमुख अनुपम लहे,
 शिव, अतुल, उत्तम, परम निर्मळ, अजर-अमरस्वरूप जे. १६२.
- भगवंत सिद्धो—त्रिजगपूजित, नित्य, शुद्ध, निरंजना
 —वर भावशुद्धि दो मने दृग, ज्ञान ने चारित्रमां. १६३.
- बहु कथन शुं करवुं ? अरे ! धर्मार्थकामविमोक्ष ने
 बीजाय बहु व्यापार, ते सौ भाव मांही रहेल छे. १६४.
- अे रीत सर्वज्ञे कथित आ भावप्राभृत-शास्त्रनां
 सुपठन-सुश्रवण-सुभावनाथी वास ३अविचळ धाममां. १६५.



६. मोक्षप्राभृत

- करीने ४क्षपण कर्मो तणुं, परद्रव्य परिहरी जेमणे
 ज्ञानात्मा आत्मा प्राप्त कीधो, नमुं नमुं ते देवने. १.
- ते देवने नमी—५अमित-वर-दृगज्ञानधरने शुद्धने,
 कहुं परमपद—परमात्मा—प्रकरण परमयोगीन्द्रने. २.

१. चक्रेश-केशव-राम-जिन-गणी-सुरवरादिक-सौख्यने = चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र,
 तीर्थकर, गणधर, देवेन्द्र वगैरनां सुखने.

२. सुविशुद्धभाव = शुद्ध भाववाळा. ३. अविचळ धाम = सिद्धपद; मोक्ष.

४. क्षपण = क्षय. ५. अमित-वर = अनंत अने प्रधान.

- जे जाणीने, योगस्थ योगी, सतत देखी जेहने,
उपमाविहीन अनंत अव्याबाध शिवपदने लहे. ३.
- ते आत्मा छे ^१परम-अंतर-बहिर त्रणधा देहीमां;
^२अंतर-उपाये ^३परमने ध्याओ, तजो बहिरात्मा. ४.
- छे ^४अक्षधी बहिरात्मा, आत्मबुद्धि अंतर-आत्मा,
जे मुक्त कर्मकलंकथी ते देव छे परमात्मा. ५.
- ते छे विशुद्धात्मा, अनिद्रय, मळरहित, तनमुक्त छे,
परमेष्ठी, केवळ, परमजिन, शाश्वत, ^५शिवंकर, सिद्ध छे. ६.
- थई ^६अंतरात्मारूढ, बहिरात्मा तजीने त्रणविधे,
^७ध्यातव्य छे परमात्मा—जिनवरवृषभ-उपदेश छे. ७.
- ^८बाह्यार्थ प्रत्ये ^९स्फुरितमन; ^{१०}स्वभ्रष्ट इन्द्रियद्वारथी,
निजदेह ^{११}अध्यवसित करे आत्मापणे ^{१२}जीव मूढधी. ८.

१. परम-अंतर-बहिर त्रणधा = परमात्मा, अंतरात्मा अने बहिरात्मा - अंम त्रण प्रकारे.

२. अंतर-उपाये = अंतरात्मारूप साधनथी; अंतरात्मारूप जे परिणाम ते परिणामरूप साधनथी. ३. परमने = परमात्माने.

४. अक्षधी = इंद्रियबुद्धि; 'इंद्रियो ते ज आत्मा छे' अवी बुद्धिवाळो.

५. शिवंकर = सुखकर; कल्याणकर. ६. अंतरात्मारूढ = अंतरात्मां आरूढ; अंतरात्मारूपे परिणत. ७. ध्यातव्य = ध्यावायोग्य; ध्यान करवा योग्य.

८. बाह्यार्थ = बहिरात्मा पदार्थो. ९. स्फुरितमन = स्फुरायमान (तत्पर) मनवाळो.

१०. स्वभ्रष्ट इंद्रियद्वारथी = इंद्रियो द्वारा आत्मस्वरूपथी च्युत.

११. अध्यवसित करे = माने.

१२. जीव मूढधी = मूढ बुद्धिवाळो जीव; मूढबुद्धि (अर्थात् बहिरात्मा) जीव.

- निजदेह समः परदेह देखी मूढ त्यां उद्यम करे,
ते छे अचेतन तोय माने तेहने ३आत्मापणे. ६.
- वस्तुस्वरूप जाण्या विना ३देहे स्व-अध्यवसायथी
अज्ञानी जनने मोह फाले पुत्रदागदिक महीं. १०.
- रही लीन मिथ्याज्ञानमां, मिथ्यात्वभावे परिणमी,
ते देह माने 'हुं'पणे ३फरीनेय मोहोदय थकी. ११.
- निर्द्वंद्व. निर्मम, देहमां निरपेक्ष, ३मुक्ताग्रंभ जे,
जे लीन आत्मस्वभावमां, ते योगी पामे मोक्षने. १२.
- परद्रव्यरत बंधाय, ३विरत मुकाय विधविध कर्मथी;
—आ, बंधमोक्ष विषे जिनेश्वरदेशना संक्षेपथी. १३.
- ३ ! नियमथी निजद्रव्यरत साधु सुदृष्टि होय छे,
सम्यक्त्वपरिणत वर्ततो दुष्टाट कर्मो क्षय करे. १४.
- परद्रव्यमां रत साधु तो मिथ्यादरशयुत होय छे,
मिथ्यात्वपरिणत वर्ततो बांधे करम दुष्टाटने. १५.

१. ते = परनो देह.

२. आत्मापणे = परना आत्मा तरीके.

३. देहे स्व-अध्यवसायथी = 'देह ते ज आत्मा छे' अवा मिथ्या अभिप्रायथी.

४. फरीनेय = आगामी भवमां पण.

५. मुक्ताग्रंभ = निराग्रंभ; आरंभ रहित.

६. विरत = परद्रव्यथी विरमेल; परद्रव्यथी विराम पामेल.

७. दुष्टाट कर्मो = दुष्ट आट कर्मोनि; खराब अवां आट कर्मोनि.

- परद्रव्यथी दुर्गति, खरे सुगति स्वद्रव्यथी थाय छे;
 —अे जाणी, निजद्रव्ये रमो, परद्रव्यथी विरमो तमे. १६.
- १आत्मस्वभावेतर सचित्त, अचित्त, तेम ज मिश्र जे,
 ते जाणवुं परद्रव्य—सर्वज्ञे कह्युं २अवितथपणे. १७.
- दुष्टाष्टकर्मविहीन, अनुपम, ३ज्ञानविग्रह, नित्य ने
 जे शुद्ध भाख्यो जिनवरे, ते आतमा स्वद्रव्य छे. १८.
- परविमुख थई निजद्रव्य जे ध्यावे सुचारित्रीपणे,
 जिनदेवना मारग महीं ४संलग्न ते शिवपद लहे. १९.
- जिनदेवमत-अनुसार ध्यावे योगी निजशुद्धात्मने,
 जेथी लहे निर्वाण, तो शुं नव लहे ५सुरलोकने ? २०.
- बहु भार लई दिन अेकमां जे गमन सो योजन करे,
 ते व्यक्तिथी ६क्रोशार्ध पण नव जई शकाय शुं भूतळे ? २१.
- जे सुभट होय ७अजेय कोटि नरोथी—सैनिक सर्वथी,
 ते वीर सुभट जिताय शुं संग्राममां नर अेकथी ? २२.
- तपथी लहे सुरलोक सौ, पण ध्यानयोगे जे लहे
 ते आतमा परलोकमां पामे सुशाश्वत सौख्यने. २३.

१. आत्मस्वभावेतर = आत्मस्वभावथी अन्य.

२. अवितथपणे = सत्यपणे; यथार्थपणे. ३. ज्ञानविग्रह = ज्ञानरूप शरीरवाळो.

४. संलग्न = लागेल; वळगेल; जोडायेल.

५. सुरलोक = देवलोक; स्वर्ग.

६. क्रोशार्ध = अर्ध कोस; अर्धो गाड.

७. अजेय = न जीती शकाय अेवो.

જ્યમ શુદ્ધતા પામે સુવર્ણ ^૧અતીવ શોભન યોગથી,
આત્મા બને પરમાતમા ત્યમ કાલ-આદિક લબ્ધિથી. ૨૪.

^૨દિવ ઠીક વ્રતતપથી, ન હો દુખ ^૩ઇતરથી નરકાદિકે;
છાંચે અને તડકે ^૪પ્રતીક્ષાકરણમાં બહુ ભેદ છે. ૨૫.

^૫સંસાર-અર્ણવ રુદ્રથી ^૬નિઃસરણ ઇચ્છે જીવ જે,
ધ્યાવે ^૭કરમ-ઇન્ધન તળા દહનાર નિજ શુદ્ધાત્મને. ૨૬.

સઘલા કષાયો, ^૮મોહરાગવિરોધ-મદ-ગારવ તજી,
ધ્યાનસ્થ ધ્યાવે આત્મને, વ્યવહાર લૌકિકથી છૂટી. ૨૭.

ત્રિવિધે તજી મિથ્યાત્વને, અજ્ઞાનને, ^૯અઘ-પુણ્યને,
યોગસ્થ યોગી મૌનવ્રતસંપન્ન ધ્યાવે આત્મને. ૨૮.

દેખાય મુજને રૂપ જે તે જાણતું નહિ સર્વથા,
ને જાણનાર ન ^{૧૦}દૃશ્યમાન; હું બોલું કોની સાથમાં? ૨૯.

૧. અતીવ શોભન = અતિ સારા.

૨. દિવ ઠીક વ્રતતપથી = (અવ્રત અને અતપથી નરકાદિ દુઃખ પ્રાપ્ત થાય તેના કરતાં) વ્રતતપથી સ્વર્ગ પ્રાપ્ત થાય તે મુકાબલે સારું છે.

૩. ઇતરથી = બીજાથી (અર્થાત્ અવ્રત અને અતપથી).

૪. પ્રતીક્ષાકરણમાં = રાહ જોવામાં.

૫. સંસાર-અર્ણવ રુદ્રથી = ભયંકર સંસારસમુદ્રથી.

૬. નિઃસરણ = બહાર નીકળવું તે.

૭. કરમ-ઇન્ધન તળા દહનાર = કર્મરૂપી ઇન્ધણને બાળી નાશનાર.

૮. મોહરાગવિરોધ = મોહરાગદ્વેષ. ૯. અઘ-પુણ્યને = પાપને તથા પુણ્યને.

૧૦. ન દૃશ્યમાન = દેખાતો નથી.

- आस्रव समस्त निरोधीने क्षय पूर्वकर्म तणो करे,
ज्ञाता ज बस रही जाय छे योगस्थ योगी;—जिन कहे. ३०.
- योगी सूता व्यवहारमां ते जागता निजकार्यमां;
जे जागता व्यवहारमां ते सुप्त आतमकार्यमां. ३१.
- ईम जाणी योगी सर्वथा छोडे सकळ व्यवहारने,
परमात्मने ध्यावे यथा उपदिष्ट जिनदेवो वडे. ३२.
- तुं ^१पंचसमित, ^२त्रिगुप्त ने संयुक्त पंचमहाब्रते,
^३रत्नत्रयीसंयुतपणे कर नित्य ^४ध्यानाध्ययनने. ३३.
- रत्नत्रयी आराधनारो जीव आराधक कह्यो;
आराधनानुं विधान केवलज्ञानफळदायक अहो ! ३४.
- छे सिद्ध, आत्मा शुद्ध छे ने सर्वज्ञानीदर्शी छे,
तुं जाण रे!—जिनवरकथित आ जीव केवल ज्ञान छे. ३५.
- जे योगी आराधे रत्नत्रय प्रगट जिनवरमार्गधी,
ते आत्मने ध्यावे अने पर परिहरे;—शंका नथी. ३६.
- जे जाणतुं ते ज्ञान, देखे तेह दर्शन जाणवुं,
जे पाप तेम ज पुण्यनो परिहार ते चारित कह्युं. ३७.

१. पंचसमित = पांच समितिथी युक्त (वर्ततो थको).

२. त्रिगुप्त = त्रण गुप्ति सहित (वर्ततो थको).

३. रत्नत्रयीसंयुतपणे = रत्नत्रयसंयुक्तपणे.

४. ध्यानाध्ययन = ध्यान तथा अध्ययन; ध्यान तथा शास्त्राभ्यास.

छे तत्त्वरुचि सम्यक्त्व, तत्त्व तणुं १ग्रहण २सद्ज्ञान छे,
परिहार ते चारित्र छे;—जिनवरवृषभनिर्दिष्ट छे. ३८.

३दृगशुद्ध आत्मा शुद्ध छे, दृगशुद्ध ते मुक्ति लहे,
दर्शनरहित जे पुरुष ते पामे न इच्छित लाभने. ३९.

४जरमरणहर आ सारभूत उपदेश श्रद्धे स्पष्ट जे,
सम्यक्त्व भाख्युं तेहने, हो श्रमण के श्रावक भले. ४०.

जीव-अजीव केरो भेद जाणे योगी जिनवरमार्गथी,
सर्वज्ञदेवे तेहने सद्ज्ञान भाख्युं ५तथ्यथी. ४१.

ते जाणी योगी परिहरे छे पाप तेम ज पुण्यने,
चारित्र ते ६अविकल्प भाख्युं कर्मरहित जिनेश्वरे. ४२.

रत्नत्रयीयुत संयमी ७निजशक्तितः तपने करे,
शुद्धात्मने ध्यातो थको ८उत्कृष्ट पदने ते वरे. ४३.

१. ग्रहण = समजण; जाणवुं ते; ज्ञान.

२. सद्ज्ञान = सम्यग्ज्ञान.

३. दृगशुद्ध = दर्शनशुद्ध; सम्यग्दर्शनथी शुद्ध.

४. जरमरणहर = जरा अने मरणनो नाशक.

५. तथ्यथी = सत्यपणे; अवितथपणे.

६. अविकल्प = निर्विकल्प; विकल्प रहित.

७. निजशक्तितः = पोतानी शक्ति प्रमाणे.

८. उत्कृष्ट पद = परम पद (अर्थात् मुक्ति).

१त्रणथी २धरी त्रण, नित्य ३त्रिकविरहितपणे, ४त्रिकयुतपणे,
रही ५दोषयुगलविमुक्त ध्यावे योगी निज परमात्मने. ४४.

जे जीव माया-क्रोध-मद परिवर्जने, तजी लोभने,
निर्मळ स्वभावे परिणमे, ते सौख्य उत्तमने लहे. ४५.

६परमात्मभावनहीन, ७रुद्र, कषायविषये युक्त जे,
ते जीव ८जिनमुद्राविमुख पामे नहीं शिवसौख्यने. ४६.

जिनवरवृषभ-उपदिष्ट जिनमुद्रा ज शिवसुख नियमथी;
ते नव रुचे स्वप्रेय जेने, ते रहे भववन महीं. ४७.

परमात्मने ध्यातां श्रमण मळजनक लोभ थकी छूटे,
नूतन करम नहि आस्रवे—जिनदेवथी निर्दिष्ट छे. ४८.

परिणत सुदृढ-सम्यक्त्वरूप, लही सुदृढ-चारित्रने,
निज आत्मने ध्यातां थकां योगी परम पदने लहे. ४९.

१. त्रणथी = त्रण वडे (अर्थात् मन-वचन-कायाथी).

२. धरी त्रण = त्रणने धारण करीने (अर्थात् वर्षाकाळयोग, शीतकाळयोग तथा ग्रीष्मकाळयोगने धारण करीने).

३. त्रिकविरहितपणे = त्रणथी (अर्थात् शल्यत्रयथी) रहितपणे.

४. त्रिकयुतपणे = त्रणथी संयुक्तपणे (अर्थात् रत्नत्रयथी सहितपणे).

५. दोषयुगलविमुक्त = बे दोषोथी रहित (अर्थात् राग-द्वेषथी रहित).

६. परमात्मभावनहीन = परमात्मभावना रहित; निज परमात्मतत्त्वनी भावनाथी रहित. ७. रुद्र = रौद्र परिणामवाळो.

८. जिनमुद्राविमुख = जिनसदश यथाजात मुनिरूपथी पराङ्मुख.

चारित्र ते निज धर्म छे ने धर्म निज समभाव छे,
 १ते जीवना २वणरागरोष अनन्यमय परिणाम छे. ५०.

निर्मळ स्फटिक परद्रव्यसंगे अन्यरूपे थाय छे,
 त्यम जीव छे नीराग पण अन्यान्यरूपे परिणमे. ५१.

जे देव-गुरुना भक्त ने सहधर्मीमुनि-अनुरक्त^३ छे,
 ४सम्यक्त्वना वहनार योगी ध्यानमां ५रत होय छे. ५२.

तप उग्रथी अज्ञानी जे कर्मो खपावे बहु भवे,
 ज्ञानी ६त्रिगुप्तिक ते करम अंतर्मुहूर्ते क्षय करे. ५३.

७शुभ अन्य द्रव्ये रागथी मुनि जो करे ८रुचिभावने,
 तो तेह छे अज्ञानी, ने विपरीत तेथी ज्ञानी छे. ५४.

१. ते = निज समभाव.

२. वणरागरोष = रागद्वेषरहित.

३. अनुरक्त = अनुरागवाळा; वात्सल्यवाळा.

४. सम्यक्त्वना वहनार = सम्यक्त्वने धारी राखनार; सम्यक्त्वपरिणतिअे परिणम्या करनार.

५. रत = रतिवाळा; प्रीतिवाळा; रुचिवाळा.

६. त्रिगुप्तिक = त्रण-गुप्तिवंत.

७. शुभ अन्य द्रव्ये = (शुभ भावना निमित्तभूत) प्रशस्त परद्रव्यो प्रत्ये.

८. रुचिभाव = 'आ सारुं छे, हितकर छे' अेम अेकाकारपणे प्रीतिभाव.

- आसरवहेतु भाव ते शिवहेतु छे तेना मते,
तेथी ज ते छे ^१अज्ञ, आत्मस्वभावथी विपरीत छे. ५५.
- ^२कर्मजमतिक जे ^३खंडदूषणकर स्वभाविकज्ञानमां,
ते जीवने अज्ञानी, ^४जिनशासन तणा दूषक कह्या. ५६.
- ज्यां ज्ञान चरितविहीन छे, तपयुक्त पण ^५दृगहीन छे,
वळी ^६अन्य कार्यो ^७भावहीन, ते लिंगथी सुख शुं अरे? ५७.
- छे ^८अज्ञ, जेह अचेतने ^९चेतक तणी श्रद्धा धरे;
जे चेतने चेतक तणी श्रद्धा धरे, ते ज्ञानी छे. ५८.
- तपथी रहित जे ज्ञान, ज्ञानविहीन तप ^{१०}अकृतार्थ छे,
ते कारणे जीव ज्ञानतपसंयुक्त शिवपदने लहे. ५९.

१. अज्ञ = अज्ञानी.
२. कर्मजमतिक = कर्मथी उत्पन्न थयेली बुद्धिवाळा; कर्मनिमित्तक वैभाविक बुद्धिवाळा (जीव).
३. खंडदूषणकर स्वभाविकज्ञानमां = स्वभावज्ञानने खंडखंडरूप करीने दूषित करनार (अर्थात् तेने खंडखंडरूप मानीने दूषण लगाडनार).
४. जिनशासन तणा दूषक = जिनशासनने दूषित करनार अर्थात् दूषण लगाडनार.
५. दृगहीन = सम्यग्दर्शन रहित.
६. अन्य कार्यो = बीजी (आवश्यकदि) क्रियाओ.
७. भावहीन = शुद्धभाव रहित.
८. अज्ञ = अज्ञानी.
९. चेतक = चेतनार; चेतयिता; आत्मा.
१०. अकृतार्थ = प्रयोजन सिद्ध न करे अवेवुं; असफळ.

- १ध्रुवसिद्धि श्री तीर्थेश ३ज्ञानचतुष्कयुत तपने करे,
 अे जाणी ३निश्चित ज्ञानयुत जीवेय तप कर्तव्य छे. ६०.
- जे बाह्यलिंगे युक्त, आंतरलिंगरहित क्रिया करे,
 ते ४स्वकचरितथी भ्रष्ट, शिवमारगविनाशक श्रमण छे. ६१.
- ५सुखसंग ६भावित ज्ञान तो ७दुखकाळमां लय थाय छे,
 तेथी ८यथाबळ ९दुःख सह भावो श्रमण निज आत्मने. ६२.
- १०आसन-अशन-निद्रा तणो करी विजय, जिनवरमार्गथी
 ध्यातव्य छे निज आतमा, जाणी ११श्रीगुरुपरसादथी. ६३.
- छे आतमा संयुक्त दर्शन-ज्ञानथी, चारित्र्यथी;
 नित्ये अहो ! ध्यातव्य ते, जाणी श्रीगुरुपरसादथी. ६४.
- जीव जाणवो दुष्कर प्रथम, पछी १२भावना दुष्कर अरे !
 १३भावितनिजात्मस्वभावने दुष्कर विषयवैराग्य छे. ६५.

१. ध्रुवसिद्धि = जेमनी सिद्धि (ते ज भवे) निश्चित छे अेवा.

२. ज्ञानचतुष्कयुत = चार ज्ञान सहित. ३. निश्चित = नक्की; अवश्य.

४. स्वकचरित = स्वचारित्र. ५. सुखसंग = सुख सहित; शाताना योगमां.

६. भावित = भाववामां आवेलुं. ७. दुखकाळमां = उपसर्गादि दुःख आवी पडतां.

८. यथाबळ = शक्ति प्रमाणे. ९. दुःख सह = कायकलेशादि सहित.

१०. आसन-अशन-निद्रा तणो = आसननो, आहारनो अने ऊंघनो.

११. श्रीगुरुपरसादथी = गुरुप्रसादथी; गुरुकृपाथी.

१२. भावना = आत्माने भाववो ते; आत्मस्वभावनुं भावन करवुं ते.

१३. भावितनिजात्मस्वभावने = जेणे निजात्मस्वभावने भाव्यो छे ते जीवने; जेणे निज आत्मस्वभावनुं भावन प्राप्त कर्युं छे ते जीवने.

- आत्मा जणाय न, ज्यां लगी विषये प्रवर्तन नर करे;
 १विषये विरक्तमनस्क योगी जाणता निज आत्मने. ६६.
- नर कोई, आतम जाणी, आतमभावनाप्रच्युतपणे
 २चतुरंग संसारे भमे विषये विमोहित मूढ अ. ६७.
- पण विषयमांही विरक्त, आतम जाणी ३भावनयुक्त जे,
 ४निःशंक ते तपगुणसहित छोडे चतुर्गतिभ्रमणने. ६८.
- परद्रव्यमां अणुमात्र पण रति होय जेने मोहथी,
 ते मूढ छे, अज्ञानी छे, विपरीत आत्मस्वभावथी. ६९.
- जे आत्मने ध्यावे, ५सुदर्शनशुद्ध, ६दृढचारित्र छे,
 विषये विरक्तमनस्क ते शिवपद लहे निश्चितपणे. ७०.
- परद्रव्य प्रत्ये राग तो संसारकारण छे खरे;
 तेथी श्रमण नित्ये करो निजभावना स्वात्मा विषे. ७१.
- निंदा-प्रशंसाने विषे, दुःखो तथा सौख्यो विषे,
 शत्रु तथा मित्रो विषे ७समताथी चारित होय छे. ७२.

१. विषये विरक्तमनस्क = जेमनुं मन विषयोमां विरक्त छे अंवा; विषयो प्रत्ये विरक्त वित्तवाळा.

२. चतुरंग संसारे = चतुर्गति संसारमां.

३. भावनयुक्त = आत्मभावनाथी युक्त.

४. निःशंक = चोक्कस; खातरीथी.

५. सुदर्शनशुद्ध = सम्यग्दर्शनथी शुद्ध; दर्शनशुद्धिवाळा.

६. दृढचारित्र = दृढ चारित्रियुक्त. ७. समता = समभाव; साम्यपरिणाम.

- ૧આવૃત્તચરણ, વ્રતસમિતિવર્જિત, શુદ્ધભાવવિહીન જે, તે કોઈ નર ૨જલ્પે અરે !—‘નહિ ધ્યાનનો આ કાલ છે’. ૭૩.
- ૩સમ્યક્ત્વજ્ઞાનવિહીન, ૪શિવપરિમુક્ત જીવ અભવ્ય જે, તે ૫સુરત ભવસુખમાં કહે—‘નહિ ધ્યાનનો આ કાલ છે’. ૭૪.
- ૬ત્રણ ગુપ્તિ, પંચ સમિતિ, પંચ મહાવ્રતે જે મૂઢ છે, તે મૂઢ ૭અજ્ઞ કહે અરે !—‘નહિ ધ્યાનનો આ કાલ છે’. ૭૫.
- ૮ભરતે ૯દુષ્પમકાલેય ધર્મધ્યાન મુનિને હોય છે; તે હોય છે ૧૦આત્મસ્થને; માને ન તે અજ્ઞાની છે. ૭૬.
- ૧૧આજેય ૧૨વિમલત્રિરત્ન, નિજને ધ્યાઈ, ઇન્દ્રપણું લહે, વા દેવ લૌકાંતિક બને, ત્યાંથી ચ્યવી સિદ્ધિ વરે. ૭૭.
- ૧૩જે ૧૪પાપમોહિતબુદ્ધિઓ ગ્રહી જિનવરોના લિંગને પાપો કરે છે, પાપીઓ તે મોક્ષમાર્ગે ૧૫ત્યક્ત છે. ૭૮.

૧. આવૃત્તચરણ = જેમનું ચારિત્ર અવરાયેલું છે એવા.

૨. જલ્પે = બકવાદ કરે છે; બબડે છે; કહે છે.

૩. શિવપરિમુક્ત = મોક્ષથી સર્વતઃ રહિત.

૪. સુરત ભવસુખમાં = સંસારસુખમાં સારી રીતે રત (અર્થાત્ સંસારસુખમાં અભિપ્રાય-અપેક્ષાએ પ્રીતિવાળો જીવ).

૫. અજ્ઞ = અજ્ઞાની

૬. દુષ્પમકાલ = દુઃષ્પમકાલ અર્થાત્ પંચમ કાલ.

૭. આત્મસ્થ = સ્વાત્મામાં સ્થિત; આત્મસ્વભાવમાં સ્થિત.

૮. વિમલત્રિરત્ન = શુદ્ધરત્નત્રયવાળા; રત્નત્રય વડે શુદ્ધ એવા મુનિઓ.

૯. પાપમોહિતબુદ્ધિઓ = જેમની બુદ્ધિ પાપમોહિત છે એવા જીવો.

૧૦. ત્યક્ત = તજાયેલા; અસ્વીકૃત; નહિ સ્વીકારાયેલા.

जे ^१पंचवस्त्रासक्त, परिग्रहधारी, ^२याचनशील छे,
छे ^३लीन आधाकर्ममां, ते मोक्षमार्गे त्यक्त छे. ७६.

निर्मोह, विजितकषाय, ^४बावीश-परिषही, निर्ग्रथ छे,
छे मुक्त पापारंभधी, ते मोक्षमार्गे ^५गृहीत छे. ८०.

छुं अेकलो हुं, कोई पण मारां नथी लोकत्रये,
—अे भावनाथी योगीओ पामे सुशाश्वत सौख्यने. ८१.

जे देव-गुरुना भक्त छे, ^६निर्वेदश्रेणी चिंतवे,
जे ध्यानरत, ^७सुचरित्र छे, ते मोक्षमार्गे गृहीत छे. ८२.

निश्चयनये—ज्यां आतमा ^८आत्मार्थ आत्मां रमे,
ते योगी छे सुचरित्रसंयुत; ते लहे निर्वाणने. ८३.

१. पंचवस्त्रासक्त = पंचविध वस्त्रोमां आसक्त (अर्थात् रेशमी, सुतराउ वगैरे पांच प्रकारनां वस्त्रो धारण करनार).

२. याचनशील = याचनास्वभाववाळा (अर्थात् मागीने—मागणी करीने—
आहारादि लेनारा).

३. लीन आधाकर्ममां = अधःकर्ममां रत (अर्थात् अधःकर्मरूप दोषवाळो आहार
लेनारा).

४. बावीश-परिषही = बावीश परिषहोने सहनारा.

५. गृहीत = ग्रहवामां आवेला; स्वीकारवामां आवेला; स्वीकृत; अंगीकृत.

६. निर्वेदश्रेणी = वैराग्यनी परंपरा; वैराग्यभावनाओनी हारमाळा.

७. सुचरित्र = सारा चारित्रवाळा; सत्चारित्रयुक्त.

८. आत्मार्थ = आत्मा अर्थे; आत्मा माटे.

- छे योगी, ^१पुरुषाकार, जीव ^२वरज्ञानदर्शनपूर्ण छे;
^३ध्यानार योगी पापनाशक ^४द्वंद्वविरहित होय छे. ८४.
- श्रमणार्थ जिन-उपदेश भाख्यो, श्रावकार्थ सुणो हवे,
 संसारनुं हरनार ^५शिव-करनार कारण परम अे. ८५.
- ग्रही मेरुपर्वत-सम अकंप सुनिर्मळा सम्यक्त्वने,
 हे श्रावको ! दुखनाश अर्थे ध्यानमां ध्यातव्य ते. ८६.
- सम्यक्त्वने जे जीव ध्यावे ते सुदृष्टि होय छे,
 सम्यक्त्वपरिणत वर्ततो दुष्टाष्टकर्मो क्षय करे. ८७.
- बहु कथनथी शुं ? ^६नरवरो ^७गत काळ जे ^८सिद्ध्या अहो !
 जे सिद्धशे भव्यो हवे, सम्यक्त्वमहिमा जाणवो. ८८.
- नर धन्य ते, ^९सुकृतार्थ ते, पंडित अने शूरवीर ते,
 स्वप्रेय मलिन कर्युं न जेणे ^{१०}सिद्धिकर सम्यक्त्वने. ८९.

१. पुरुषाकार = पुरुषना आकारे.

२. वरज्ञानदर्शनपूर्ण = (स्वभावे) उत्तम ज्ञानदर्शनथी परिपूर्ण.

३. ध्यानार = अेवा जीवने—आत्माने—जे ध्यावे छे ते.

४. द्वंद्वविरहित = निर्द्वंद्व; (रागद्वेषादि) द्वंद्वथी रहित.

५. शिव करनार = मोक्षनुं करनारुं; सिद्धिकर.

६. नरवरो = उत्तम पुरुषो.

७. गत काळ = भूतकाळमां; पूर्वे.

८. सिद्ध्या = सिद्ध थया; मोक्ष पाय्या.

९. सुकृतार्थ = जेमणे प्रयोजनने सारी रीते सिद्ध कर्युं छे अेवा; सुकृतकृत्य.

१०. सिद्धिकर = सिद्धि करनार; मोक्ष करनार.

- १हिंसासुविरहित धर्म, दोष अढार वर्जित देवतुं,
निर्ग्रथ प्रवचन करुं जे श्रद्धान ते समकित कह्युं. ६०.
- सम्यक्त्व तेने, जेह माने २लिंग परनिरपेक्षने,
३रूपे यथाजातक, ४सुसंयत, सर्वसंगविमुक्तने. ६१.
- जे देव ५कुत्सित, धर्म कुत्सित, लिंग कुत्सित वंदता,
भय, शरम वा गारव थकी, ते जीव छे मिथ्यात्वमां. ६२.
- वंदन असंयत, ६रक्त देवो, लिंग ७सपरापेक्षने,
—अे मान्य होय कुदृष्टिने, नहि शुद्ध सम्यग्दृष्टिने. ६३.
- सम्यक्त्वयुत श्रावक करे जिनदेवदेशित धर्मने;
विपरीत तेथी जे करे, कुदृष्टि ते ज्ञातव्य छे. ६४.
- कुदृष्टि जे, ते सुखविहीन परिभ्रमे संसारमां,
जर-जन्म-मरणप्रचुरता, दुखगणसहस्र भर्या जिहां. ६५.

१. हिंसासुविरहित = हिंसारहित.

२. लिंग परनिरपेक्षने = परथी निरपेक्ष अेवा (अंतर्बाह्य) लिंगने; परने नहि अवलंबनारा अेवा लिंगने.

३. रूपे यथाजातक = (आंतरलिंग-अपेक्षाअे) यथानिष्पन्न - सहज - स्वाभाविक - निरुपाधिक रूपवाळा; (बाह्यलिंग-अपेक्षाअे) जन्या प्रमाणेना रूपवाळा.

४. सुसंयत = सारी रीते संयत; सुसंयमयुक्त.

५. कुत्सित = निंदित; खराब; अधम.

६. रक्त = रागी.

७. सपरापेक्ष = परनी अपेक्षावाळा.

- ‘सम्यक्त्व गुण, मिथ्यात्व दोष’ तुं अम मन सुविचारिने,
 कर ते तने जे मन रुचे; बहु कथन शुं करवुं अरे ? ६६.
- निर्ग्रथ, बाह्य असंग, पण नहि त्यक्त मिथ्याभाव ज्यां,
 जाणे न ते समभाव निज; शुं १स्थान-मौन करे तिहां ? ६७.
- जे मूळगुणने छेदीने मुनि बाह्यकर्मो आचरे,
 पामे न शिवसुख २निश्चये ३जिनकथित-लिंग-विराधने. ६८.
- बहिरंग कर्मो शुं करे ? उपवास बहुविध शुं करे ?
 रे ! शुं करे आतापना ?—आत्मस्वभावविरुद्ध जे. ६९.
- पुष्कळ भणे श्रुतने भले, चारित्र बहुविध आचरे,
 छे बाळश्रुत ने बाळचारित, आत्मथी विपरीत जे. १००.
- छे साधु जे वैराग्यपर ने विमुख परद्रव्यो विषे,
 भवसुखविरक्त, स्वकीय शुद्ध सुखो विषे अनुरक्त जे. १०१.
- ४आदेयहेय-सुनिश्चयी, ५गुणगणविभूषित-अंग जे,
 ध्यानाध्ययनरत जेह, ते मुनि स्थान उत्तमने लहे. १०२.

१. स्थान = निश्चलपणे ऊभा रहेवुं ते; ऊभां ऊभां कायोत्सर्गस्थित रहेवुं ते; अक
 आसने निश्चल रहेवुं ते.

२. निश्चये = नक्की.

३. जिनकथित-लिंग-विराधने = जिनकथित लिंगनी विराधना करतो होवाथी.

४. आदेयहेय-सुनिश्चयी = उपादेय अने हेयनो जेमणे निश्चय करेलो छे अेवा.

५. गुणगणवभूषित-अंग = गुणोना समूहथी सुशोभित अंगवाळा.

प्रणमे ^१प्रणत जन, ^२ध्यात जन ध्यावे निरंतर जेहने,
तुं जाण तत्त्व ^३तनस्थ ते, जे ^४स्तवनप्राप्त जनो स्तवे. १०३.

अर्हंत-सिद्धाचार्य-अध्यापक-श्रमण—परमेष्ठी जे,
पांचेय छे आत्मा महीं; आत्मा शरण मारुं खरे. १०४.

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सत्चारित्र, सत्तपचरण जे,
चारेय छे आत्मा महीं; आत्मा शरण मारुं खरे. १०५.

आ जिननिरूपित मोक्षप्राभृत-शास्त्रने सद्भक्तिअे
जे पठन-श्रवण करे अने भावे, लहे सुख नित्यने. १०६.



७. लिंगप्राभृत

करीने नमन भगवंत श्री अर्हंतने, श्री सिद्धने,
भाखीश हुं संक्षेपथी मुनिलिंगप्राभृतशास्त्रने. १.

होये धरमथी लिंग, धर्म न लिंगमात्रथी होय छे;
रे ! भावधर्म तुं जाण, तारे लिंगथी शुं कार्य छे ? २.

१. प्रणत जन = बीजाओ वडे जेमने प्रणमवामां आवे छे ते जनो.

२. ध्यात जन = बीजाओ वडे जेमने ध्यावामां आवे छे ते जनो.

३. तनस्थ = देहस्थ; शरीरमां रहेल.

४. स्तवनप्राप्त जनो = बीजाओ वडे जेमने स्तववामां आवे छे ते जनो.

- जे ^१पापमोहितबुद्धि, जिनवरलिंग धरी, ^२लिंगित्वने उपहसित करतो, ते ^३विघाते ^४लिंगीओना लिंगने. ३.
- जे लिंग धारी नृत्य, गायन, वाद्यवादनने करे, ते पापमोहितबुद्धि छे तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. ४.
- जे संग्रहे, रक्षे ^५बहुश्रमपूर्व, ध्यावे ^६आर्तने, ते पापमोहितबुद्धि छे तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. ५.
- ^७द्यूत जे रमे, बहुमान-गर्वित वाद-कलह सदा करे, लिंगीरूपे करतो थको पापी नरकगामी बने. ६.
- जे ^८पाप-उपहतभाव सेवे लिंगमां अब्रह्मने, ते पापमोहितबुद्धिने परिश्रमण ^९संसृतिकानने. ७.
- ज्यां लिंगरूपे ज्ञानदर्शनचरणनुं धारण नहीं, ने ध्यान ध्यावे आर्त, तेह अनंतसंसारी मुनि. ८.

१. पापमोहितबुद्धि = जेनी बुद्धि पापमोहित छे अेवो पुरुष.

२. लिंगित्वने उपहसित करतो = लिंगीपणानो उपहास करे छे; लिंगीभावनी मशकरी करे छे; मुनिपणानी मजाक करे छे.

३. विघाते = घात करे छे; नष्ट करे छे; हानि पहोंचाडे छे.

४. लिंगीओ = मुनिओ; साधुओ; श्रमणो.

५. बहुश्रमपूर्व = बहु श्रमपूर्वक; घणा प्रयत्नथी.

६. आर्त = आर्तध्यान. ७. द्यूत = जुगार.

८. पाप-उपहतभाव = पापथी जेनो भाव हणायेलो छे अेवो पुरुष.

९. संसृतिकानने = संसाररूपी वनमां.

- जोडे विवाह, करे कृषि-व्यापार-जीवविघात जे,
लिंगीरूपे करतो थको पापी नरकगामी बने. ६.
- चोरो-लबाडोने लडावे, तीव्र परिणामो करे,
चोपाट-आदिक जे रमे, लिंगी नरकगामी बने. १०.
- दृग्ज्ञानचरणे, नित्यकर्म, तपनियमसंयम विषे
जे वर्ततो पीडा करे, लिंगी नरकगामी बने. ११.
- जे भोजने रसगृद्धि करतो वर्ततो कामादिके,
मायावी लिंगविनाशी ते तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. १२.
- ^१पिंडार्थ जे दोडे अने करी कलह भोजन जे करे,
ईर्षा करे जे अन्यनी, जिनमार्गनो नहि श्रमण ते. १३.
- ^२अणदत्तनुं ज्यां ग्रहण, जे ^३असमक्ष परनिंदा करे,
जिनलिंगधारक हो छतां ते श्रमण चोर समान छे. १४.
- ^४लिंगात्म ईर्यासमितिनो धारक छतां कूदे, पडे,
दोडे, उखाडे भोंय, ते तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. १५.
- जे अवगणीने बंध, खांडे धान्य, खोदे पृथ्वीने,
बहु वृक्ष छेदे जेह, ते तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. १६.

१. पिंडार्थ = आहार अर्थ; भोजनप्राप्ति माटे.

२. अणदत्त = अदत्त; अणदीधेल; नहि देवामां आवेल.

३. असमक्ष = परोक्षपणे; अप्रत्यक्षपणे; असमीपपणे; छानी रीते.

४. लिंगात्म = लिंगरूप; मुनिलिंगस्वरूप.

- स्त्रीवर्ग पर नित राग करतो, दोष दे छे अन्यने,
दृगज्ञानथी जे शून्य, ते तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. १७.
- दीक्षाविहीन गृहस्थ ने शिष्ये धरे बहु स्नेह जे,
आचार-विनयविहीन, ते तिर्यचयोनि, न श्रमण छे. १८.
- ईम वर्तनारो संयतोनी मध्य नित्य रहे भले,
ने होय ^१बहुश्रुत, तोय ^२भावविनष्ट छे, नहि श्रमण छे. १९.
- स्त्रीवर्गमां ^३विश्वस्त दे छे ज्ञान-दर्शन-चरण जे,
पार्श्वस्थथी पण हीन भावविनष्ट छे, नहि श्रमण छे. २०.
- ^४असतीगृहे भोजन, ^५करे स्तुति नित्य, पोषे ^६पिंड जे,
अज्ञानभावे युक्त भावविनष्ट छे, नहि श्रमण छे. २१.
- अे रीत सर्वज्ञे कथित आ लिंगप्राभृत जाणीने,
जे धर्म पाळे ^७कष्ट सह, ते स्थान उत्तमने लहे. २२.



-
१. बहुश्रुत = बहु शास्त्रोनी जाणनार; विद्वान.
२. भावविनष्ट = भावभ्रष्ट; भावशून्य; शुद्धभावथी (दर्शनज्ञानचारित्र्यथी) रहित.
३. विश्वस्त = (१) विश्वासुपणे अर्थात् (स्त्रीवर्गनो) विश्वास करीने; निर्भयपणे;
(२) विश्वसनीयपणे अर्थात् (स्त्रीवर्गमां) विश्वास उपजावीने.
४. असतीगृहे = व्यभिचारिणी स्त्रीना घरे.
५. करे स्तुति नित्य = हमेशां तेनी प्रशंसा करे छे. ६. पिंड = शरीर.
७. कष्ट सह = कष्ट सहित; प्रयत्नपूर्वक.

८. शीलप्राभृत

- १विस्तीर्णलोचन, २रक्तकजकोमल-सुपद श्री वीरने
त्रिविधे करीने वंदना, हुं वर्णवुं शीलगुणने. १.
- न विरोध भाख्यो ज्ञानीओअे शीलने ने ज्ञानने;
विषयो करे छे नष्ट केवळ शीलविरहित ज्ञानने. २.
- दुष्कर जणावुं ज्ञाननुं, पछी भावना दुष्कर अरे !
वळी भावनायुत जीवने दुष्कर विषयवैराग्य छे. ३.
- जाणे न आर्सा ज्ञानने, वर्ते विषयवश ज्यां लगी;
नहि ३क्षपण पूरवकर्मनुं केवळ विषयवैराग्यथी. ४.
- जे ज्ञान चरणविहीन, धारण लिंगनुं दृगहीन जे,
तपचरण जे संयमसुविरहित, ते बधुंय ४निरर्थ छे. ५.
- जे ज्ञान चरणविशुद्ध, धारण लिंगनुं ५दृगशुद्ध जे,
तप जे ६ससंयम, ते भले थोडुं, महाफळयुक्त छे. ६.

-
१. विस्तीर्णलोचन = (१) विशाल नेत्रवाळा; (२) विस्तृत दर्शनज्ञानवाळा.
२. रक्तकजकोमल-सुपद = लाल कमळ जेवां कोमळ जेमनां सुपद (सुंदर चरणो
अथवा रागद्वेषरहित वचनो) छे अेवा.
३. क्षपण = क्षय करवो ते; नाश करवो ते.
४. निरर्थ = निरर्थक; निष्फळ.
५. दृगशुद्ध = सम्यग्दर्शन वडे शुद्ध.
६. ससंयम = संयम सहित.

- नर कोई, जाणी ज्ञानने, आसक्त रही विषयादिके,
भटके चतुर्गतिमां अरे ! विषये विमोहित मूढ अ. ७.
- पण विषयमांही विरक्त, जाणी ज्ञान, भावनयुक्त जे,
निःशंक ते तपगुणसहित छेदे चतुर्गतिभ्रमणने. ८.
- धमतां लवण-खडीलेपपूर्वक कनक निर्मळ थाय छे,
त्यम जीव पण सुविशुद्ध १ज्ञानसलिलथी निर्मळ बने. ९.
- जे ज्ञानथी गर्वित बनी विषयो महीं राचे जनो,
ते ज्ञाननो नहि दोष, दोष कुपुरुष मंदमति तणो. १०.
- सम्यक्त्वसंयुत ज्ञान, दर्शन, तप अने चारित्रथी
चारित्रशुद्ध जीवो करे उपलब्धि २परिनिर्वाणनी. ११.
- जे शीलने रक्षे, सुदर्शनशुद्ध, दृढचारित्र जे,
जे विषयमांही ३विरक्तमन, निश्चित लहे निर्वाणने. १२.
- छे ४इष्टदर्शी मार्गमां, हो विषयमां मोहित भले;
उन्मार्गदर्शी जीवनुं जे ज्ञान तेय निरर्थ छे. १३.
- ५दुर्मत-कुशास्त्रप्रशंसको जाणे विविध शास्त्रो भले,
व्रत-शील-ज्ञानविहीन छे तेथी न आराधक खरे. १४.

१. ज्ञानसलिल = ज्ञानजळ; ज्ञानरूपी नीर.

२. परिनिर्वाण = मोक्ष.

३. विरक्तमन = विरक्त मनवाळा.

४. इष्टदर्शी = इष्टने देखनार; हितने श्रद्धनार; सन्मार्गनी श्रद्धावाळा.

५. दुर्मत = कुमत.

- हो रूपश्रीगर्वित, भले लावण्ययौवनकान्ति हो,
मानवजनम छे निष्प्रयोजन शीलगुणवर्जित तणो. १५.
- व्याकरण, छंदो, न्याय, वैशेषिक, व्यवहारादिनां
शास्त्रो तणुं हो ज्ञान तोपण शील उत्तम सर्वमां. १६.
- रे ! शीलगुणमंडित भविकना देव वल्लभ होय छे;
लोके कुशील जनो, भले श्रुतपारगत हो, तुच्छ छे. १७.
- सौथी भले हो ^१हीन, ^२रूपविरूप, यौवनभ्रष्ट हो,
^३मानुष्य तेनुं छे ^४सुजीवित, शील जेनुं सुशील हो. १८.
- प्राणीदया, दम, सत्य, ब्रह्म, अचौर्य ने संतुष्टता,
सम्यक्त्व, ज्ञान, तपश्चरण छे शीलना परिवारमां. १९.
- छे शील ते तप शुद्ध, ते दृगशुद्धि, ज्ञानविशुद्धि छे,
छे शील ^५अरि विषयो तणो ने शील ^६शिवसोपान छे. २०.
- विष घोर जंगम-स्थावरोनुं नष्ट करतुं सर्वने,
पण ^७विषयलुब्ध तणुं विघातक विषयविष अतिरौद्र छे. २१.

-
१. हीन = हीणा (अर्थात् कुलादि बाह्य संपत्ति अपेक्षाअे हलका).
२. रूपविरूप = रूपे विरूप; रूप-अपेक्षाअे कुरूप.
३. मानुष्य = मानुष्यपणुं (अर्थात् मनुष्यजीवन).
४. सुजीवित = सारी रीते जिवायेलुं; प्रशंसनीयपणे—सफळपणे जीववामां आवेलुं.
५. अरि = वेरी; शत्रु. ६. शिवसोपान = मोक्षनुं पगथियुं.
७. विषयलुब्ध तणुं विघातक = विषयलुब्ध जीवोनी घात करनारुं (अर्थात् तेमनुं अत्यंत बूरुं करनारुं).

विषवेदनाहत जीव अेक ज वार पामे मरणने,
पण विषयविषहत जीव तो १संसारकांतारे भमे. २२.

बहु वेदना नरको विषे, दुःखो मनुज-तिर्यचमां,
देवेय २दुर्भगता लहे विषयावलंबी आतमा. २३.

३तुष दूर करतां जे रीते कई ४द्रव्य नरनुं न जाय छे,
तपशीलवंत ५सुकुशल, ६खळ माफक, विषयविषने तजे. २४.

छे भद्र, गोळ, विशाळ ने खंडात्म अंग शरीरमां,
ते सर्व होय सुप्राप्त तोपण शील उत्तम सर्वमां. २५.

दुर्मतविमोहित विषयलुब्ध जनो इतरजन साथमां
७अरघट्टिकाना चक्र जेम परिभ्रमे संसारमां. २६.

जे कर्मग्रंथि विषयरोगे बद्ध छे आत्मा विषे,
तपचरण-संयम-शीलथी सुकृतार्थ छेदे तेहने. २७.

तप-दान-शील-सुविनय—रत्नसमूह सह, जलधि समो,
८सोहंत ९जीव सशील पामे श्रेष्ठ शिवपदने अहो ! २८.

१. संसारकांतारे = संसाररूपी मोटा भयंकर वनमां. २. दुर्भगता = दुर्भाग्य.

३. तुष दूर करतां = धान्यमांथी फोतरां वगेरे कचरो काडी नाखतां.

४. द्रव्य = वस्तु (अर्थात् धान्य). ५. सुकुशल = कुशल अर्थात् प्रवीण पुरुष.

६. खळ = वस्तुनो, रसकस विनानो नकामो भाग-कचरो; सत्त्व काडी लेतां बाकी
रहेता कूचा. ७. अरघट्टिका = रेंट.

८. सोहंत = सोहतो; शोभतो.

९. जीव सशील = शीलसहित जीव; शीलवान जीव.

- देखाय छे शुं मोक्ष स्त्री-पशु-गाय-गर्दभ-धाननो ?
 जे ^१तुर्यने साधे, लहे छे मोक्ष;—देखो सौ जनो. २६.
- जो मोक्ष साधित होत ^२विषयविलुब्ध ज्ञानधरो वडे,
 दशपूर्वधर पण सात्यकिसुत केम पामत नरकने ? ३०.
- जो शील विण बस ज्ञानथी कही होय शुद्धि ज्ञानीअे,
 दशपूर्वधरनो भाव केम थयो नहीं निर्मळ अरे ? ३१.
- ^३विषये विरक्त करे ^४सुसह अति-उग्र नारकवेदना
 ने पामता अर्हतपद;—वीरे कह्युं जिनमार्गमां. ३२.
- ^५अत्यक्ष-शिवपदप्राप्ति आम घणा प्रकारे शीलथी
 प्रत्यक्षदर्शनज्ञानधर लोकज्ञ जिनदेवे कही. ३३.
- सम्यक्त्व-दर्शन-ज्ञान-तप-वीर्याचरण आत्मा विषे,
 पवने सहित ^६पावक समान, ^७दहे ^८पुरातन कर्मने. ३४.

१. तुर्यने = चतुर्थने (अर्थात् मोक्षरूप चौथा पुरुषार्थने).

२. विषयविलुब्ध = विषयलुब्ध; विषयोना लोलुप.

३. विषये विरक्त = विषयविरक्त जीवो.

४. सुसह = सहेलाईथी सहन थाय अेवी (अर्थात् हळवी).

५. अत्यक्ष = अतींद्रिय; इंद्रियातीत.

६. पावक = अग्नि.

७. दहे = बाळे.

८. पुरातन = जूनां.

- १ विजितेन्द्रि विषयविरक्त थई, धरीने विनय-तप-शीलने, .
 २ धीरा ३ दही वसु कर्म, शिवगतिप्राप्त सिद्धप्रभु बने. ३५
- जे श्रमण केरुं जन्मतरु लावण्य-शीलसमृद्ध छे,
 ते शीलधर छे, छे महात्मा, लोकमां गुण विस्तरे. ३६
- दृगशुद्धि, ज्ञान, समाधि, ध्यान स्वशक्ति-आश्रित होय छे,
 सम्यक्त्वथी जीवो लहे छे ४ बोधिने जिनशासने. ३७
- जिवचननो ग्रही सार, विषयविरक्त धीर तपोधनो,
 करी स्नान ५ शीलसलिलथी, सुख सिद्धिनुं पामे अहो ! ३८
- ६ आराधनापरिणत सरव गुणथी करे ७ कृश कर्मने,
 सुखदुखरहित ८ मनशुद्ध ते क्षेपे करमरूप धूळने. ३९
- अर्हंतमां शुभ भक्ति श्रद्धाशुद्धियुत सम्यक्त्व छे,
 ने शील विषयविरागता छे; ज्ञान बीजुं कयुं हवे ? ४०



-
१. विजितेन्द्रि = जितेन्द्रिय. २. धीरा = धीर पुरुषो.
 ३. दही वसु कर्म = आठ कर्मने बाळीने. ४. बोधि = रत्नत्रयपरिणति.
 ५. शीलसलिल = शीलरूपी जळ.
 ६. आराधनापरिणत = आराधनारूपे परिणमेला पुरुषो.
 ७. कृश = नबळां; पातळां; क्षीण.
 ८. मनशुद्ध = शुद्ध मनवाळा (अर्थात् शुद्ध परिणतिवाळा).